विज्ञान गरिमा सिंधु

अंकः 70

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक 70

जुलाई-सितंबर, 2009

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

4690 HRD/10—1 A

विज्ञान गरिमा सिंधु पत्रिका एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है - हिंदी के माध्यम से विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठय पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें विज्ञान विषयों के लेख, वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली चर्चा, विज्ञान कविताएं, विज्ञान कथाएं, विज्ञान समाचार, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित सामयिक विषय पर होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसमें दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें।
6. लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें।
7. लेख में प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
8. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
9. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
10. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है।
11. अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट लगा लिफाफा न भेजें।
12. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/- रुपए प्रति हजार शब्द है तथा न्यूनतम राशि 150/- रुपए और अधिकतम राशि 1000/- रुपए है।
13. भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
14. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    श्री अशोक सेलवटकर
    संपादक, 'विज्ञान गरिमा सिंधु'
    (मानव संसाधन विकास मंत्रालय)
    पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली-110066

15. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
प्रति अंक विद्यार्थियों के लिए	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

कापीराइट

प्रकाशक:
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली – 110 066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली – 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स,
दिल्ली – 110 054

4690 HRD/10—1 B

विज्ञान गरिमा सिंधु

प्रधान संपादक
प्रो. के. बिजय कुमार
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादक
श्री अशोक सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

प्रकाशन
डॉ. पी.एन. शुक्ल
सहायक निदेशक

श्री आलोक वाही
कलाकार

श्री कर्मचन्द
प्रवर श्रेणी लिपिक

संपादन मंडल

1. प्रो. कीर्ति सिंह,
पूर्व कुलपति, श्रीमती इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद, इलाहाबाद - 211002
सी-1/9654, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070
2. डॉ ओम विकास,
पूर्व निदेशक
भारती सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, ग्वालियर
3. डा. कृष्ण बिहारी पांडेय,
पूर्व अध्यक्ष, लोक सेवा आयोग (उ.प्र.),
10 कस्तूरबा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद
4. संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग,
गृहमंत्रालय, लोकनायक भवन,
खान मार्केट, नई दिल्ली-110003
5. डॉ. शिव गोपाल मिश्र,
प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानंद मार्ग, इलाहाबाद - 221002
6. निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी,
कोठी नं. 897, सेक्टर - 2, पंचकुला - 2211002
7. डॉ. निशीथ चतुर्वेदी,
परामर्शदाता एवं अध्यक्ष, विकृति-विज्ञान विभाग
डॉ. राम मनोहर लोहिया अस्पताल, नई दिल्ली-110001
8. डॉ. मुरलीधर तिवारी
निदेशक, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद
9. पूर्व अध्यक्ष, भारतीय विज्ञान लेखक संघ
457, हवासिंह ब्लॉक, खेलगांव, एशियाड विलेज
नई दिल्ली
10. अपर सचिव
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
11. संयुक्त शिक्षा सलाहकार (भाषा)
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
शास्त्री भवन, नई दिल्ली.110001
12. प्रो. के. बिजय कुमार
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली-110066

प्राक्कथन

विज्ञान गारिमा सिंधु का 70 वां अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता है। यह पत्रिका हिंदी में विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में अपना अप्रतिम स्थान ग्रहण कर चुकी है। विषयों की स्तरीयता और तकनीकी शब्दावली इसे अन्य पत्रिकाओं से अलग करती है। इस पत्रिका के माध्यम से हिंदी में वैज्ञानिक लेखन के क्षेत्र में अनेक लेखक उभर कर सामने आए हैं। भाषा के विकास में पत्रिकाओ का योगदान अप्रत्यक्ष व अनवरन रूप से होता है। वस्तुत: किसी भी भाषा-विशेष में विज्ञान का उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान तभी संभव होता है जब उस भाषा में विज्ञान (तथा अन्य विषयों) में मौलिक उच्च स्तरीय लेखन हो। इस प्रकार विज्ञान की पत्रिकाएं पाठमालाएं एवं अन्य भौतिक प्रकाशन ही वैज्ञानिक भाषा व अभिव्यक्ति को स्तरीयता व प्रमाणिकता प्रदान करते हैं।

इस पत्रिका के संबंध में पाठको के सुझावों/मार्गदर्शन की हमेशा अपेक्षा रहेगी।

(डॉ. के बिजय कुमार)
प्रधान संपादक

अनुक्रम

			पृष्ठ सं.
1.	भारतीय कृषि की भावी चुनौतियां	डॉ. दिनेश मणि	1
2.	मधुमक्खी पालन: उद्योग के रूप में	डा. प्रेम किशोर, विनीता मित्तल एवं गणेश राय	7
3.	आम के प्रमुख विकार, कीट एवं रोग तथा उनके नियंत्रण के उपाय	डॉ. राम रोशन शर्मा	16
4.	टिकाऊ खेती में दलहनी फसलों का योगदान	डॉ. दीनानाथ शुक्ला एवं डॉ. इंदुभूषण पांडेय	22
5.	सब्जी की पौध का उत्पादन: एव व्यवसाय	प्रवीण कुमार सिंह एवं प्रेम चंद चौधरी	26
6.	कृषि के नए आयाम: प्रगति-सार	डॉ. आर.एस. सेंगर	29
7.	वैश्विक तापवृद्धि: खतरे में धरती	डॉ. दीपक कोहली	37
8.	कीटों में सुरक्षा प्रणाली	डॉ. कृष्ण कुमार गुप्ता	41
9.	पेशीय दुष्पोषण	डॉ. जे.एल. अग्रवाल	44
10.	तारों की दूरी का मापन	डॉ. विजय कुमार उपाध्याय	47
11.	वस्त्र-तंतुओं का परीक्षण	डॉ. श्याम सुंदर बैरवा	50
12.	राजस्थान के उपयोगी वानिकी स्रोत	डॉ. नवीन कुमार बौहरा	58
13.	मसालों का औषधीय रूप में महत्व	डॉ. भानु प्रताप	64

विविध स्तंभ

❑	विज्ञान समाचार	डॉ. दीपक कोहली	67
❑	निकष: वानिकी शब्द:संग्रह	आयोग के प्रकाशन	73
❑	लेखक परिचय		75

1

भारतीय कृषि की भावी चुनौतियां

–डॉ. दिनेश मणि

भारत की वर्तमान जनसंख्या 105 करोड़ है। वर्ष 2025 तक इसके लगभग 139 करोड़ होने की संभावना है। इसके भरण-पोषण के लिए वर्तमान खाद्यान्न पैदावार 208 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2025 तक 350 मिलियन टन तक करनी होगी। अनुमान है कि वर्ष 2030 तक भारत विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा। कहा जाता है कि प्रत्येक वर्ष भारत की जनसंख्या में एक आस्ट्रेलिया और जुड़ जाता है। कृषि उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ उत्पादों की गुणता में भी सुधार लाना है। अत: भारतीय कृषि की भावी चुनौतियों और उसके समाधान के लिए लेखक ने बड़ी गंभीरता से पूरी जानकारी देने की कोशिश की है।

हमारे देश की जनसंख्या के 105 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2025 तक लगभग 139 करोड़ होने की संभावना है। इसके लिए वर्तमान खाद्यान्न पैदावार 208 मिलियन टन से बढ़ाकर वर्ष 2025 तक 350 मिलियन टन करनी होगी। अनेक सफलताओं के बावजूद हमारी लगभग 20% जनसंख्या को पर्याप्त भोजन और पोषण प्राप्त नहीं हो पाता है। प्रत्येक वर्ष हमारी जनसंख्या में एक आस्ट्रेलिया या मलेशिया और जुड़ जाता है। वर्ष 2030 तक भारत के विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन जाने की संभावना है। इसलिए आज देश के सम्मुख जो सबसे बड़ी चुनौती विकराल रूप से बढ़ रही जनसंख्या की है। हमें इस गंभीर चुनौती की पूरी जानकारी होनी चाहिए और इससे निपटने के लिए समुचित कार्यवाही करनी चाहिए, अन्यथा हम जो भी उत्पादन लाभ प्राप्त करेंगे वे व्यर्थ हो जाएंगे और उस विकट स्थिति से बच पाना असंभव हो जाएगा जहां भुखमरी को जन्म देती है। हमें भारतीय कृषि की वर्तमान चुनौतियों को पूरी तरह समझना होगा ताकि कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी करके उसे टिकाऊ बनाया जा सके। नि:संदेह, हमारे कृषि वैज्ञानिकों ने कृषि के क्षेत्र में अपार सफलता प्राप्त की है और हम अनाज के मामले में जहां पहले आयात पर निर्भर करते थे, अब निर्यात की स्थिति में आ गए हैं। लेकिन इन उपलब्धियों से संतुष्ट होकर बैठने से काम नहीं चलेगा। आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि कृषि उत्पादन को लगातार बढ़ाने के साथ-साथ उसे बरबादी से बचाने के लिए सुरक्षित भंडारण की आधुनिक तकनीकें अपनाई जाएं और उन्हें व्यापक रूप में प्रचारित-प्रसारित किया जाए।

हमारी लगभग 67% जनसंख्या अभी भी कृषि पर निर्भर करती है परंतु राष्ट्रीय आय में कृषि का अंशदान घटता जा रहा है। 1947 में राष्ट्रीय आय में कृषि का अंशदान 60% से अधिक था जो अब घटकर 30% के लगभग रह गया है। कृषि को उच्च प्राथमिकता देने के बावजूद कृषि में निवेश घटा है। हमने प्राकृतिक संसाधनों का इतना दुरुपयोग किया है कि ग्रीन हाउस प्रभाव, प्रदूषण जैसी पर्यावरण-संबंधी अनेक समस्याएं हमारे सामने पैदा हो गई हैं। बदलती जलवायु, नष्ट होते भू-संसाधन तथा तबाह होते प्राकृतिक संसाधन हमारी कृषि के लिए चुनौती बनकर खड़े हो गए हैं। यदि हम अब भी इस ओर ध्यान नहीं देंगे तो वक्त हमारे हाथ से निकल जाएगा। हमारे देश में हर तरह की जलवायु है, विविध प्रकार की मृदा है और मौसम तो शायद फसलों की जरूरत के अनुसार ही बने हैं। इसके साथ ही व्यापक जैव-विविधता हमारे देश में है और इन सबका सदुपयोग कर के हम कृषि के क्षेत्र में और आगे जा सकते हैं अत: इस ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

भविष्य में कृषि के लिए भू-क्षेत्र में और अधिक विस्तार करना संभव नहीं हो सकेगा। अत: उपलब्ध संसाधनों का अनुकूल उपयोग करना आवश्यक है और इस क्षेत्र में वैज्ञानिकों का योगदान बहुत जरूरी है। हालांकि हरित क्रांति वाले क्षेत्रों में तो प्रगति देखने में आई है लेकिन बारानी क्षेत्रों तथा अन्य हरे-भरे क्षेत्रों, मरुस्थलों, पर्वतीय क्षेत्रों, तटवर्ती क्षेत्रों आदि में उत्पादन और उत्पादकता दोनों ही के बारे में अभी काफी ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

विभिन्न फसलों की बेहतर किस्मों/संकर किस्मों को विकसित किया गया है, फिर भी प्रमाणित बीज उपलब्ध न होने के कारण इनके प्रभाव को महसूस नहीं किया जा सका है। अत: बीजों के अधिक उत्पादन और इनके कारगर वितरण पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होगी।

बायोगैस, सौर ऊर्जा तथा कुकिंग बायोगैस- जैसे ऊर्जा के कुछ ज्ञात नवीकरणीय स्रोतों के उत्पादन के लिए पशुओं के गोबर के अलावा मानव-मल के उपयोग के लिए लोगों को शिक्षित तथा प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इससे किसानों को जैव खादों की अधिक मात्रा मिल सकेगी। जहां तक बायोमास का संबंध है, विभिन्न कृषि जलवायु संबंधी क्षेत्रों में जल्दी बढ़ने वाले अलग-अलग वृक्षों की जातियों पर काफी अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

आज के भूमंडलीकरण के युग ने पूरे विश्व के बाजार खोल दिए हैं और इससे उत्पन्न स्पर्धा में खड़े रहने के लिए यह जरूरी है कि हमारा माल दूसरों से बढ़कर साबित हो। हमें उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ उत्पादों की गुणवत्ता में भी सुधार लाना होगा। भविष्य में विकास की प्रक्रिया ऐसे दौर में पहुंच चुकी होगी, जब आर्थिक दृष्टि से प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए पहले से बेहतर उत्पाद तैयार करना एक आवश्यक शर्त होगी। भविष्य में कृषि को विश्व स्तर पर आर्थिक, सामाजिक, पारिस्थितिक, जलवायुपरक, ऊर्जा और रोजगार संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा, जिसके लिए विशेष प्रौद्योगिकी विकसित करके उसे आम किसान तक पहुंचा कर ऐसे गुणवत्ता-पूर्ण उत्पाद प्राप्त करने की जरूरत होगी जो विश्व स्पर्धा का मुकाबला कर सकें और भरपूर लाभ अर्जित करके कृषि कार्य में जुटे लोगों के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठा कर देश की समृद्धि में योगदान कर सकें। इसके लिए हमारे योग्य वैज्ञानिकों को आधुनिक विज्ञान के आधार को और सुदृढ़ करके ऐसी कृष्य और बागवानी किस्मों का निरंतर विकास करना होगा जो रोगों, कीटों तथा अन्य अजैविक दबावों की प्रतिरोधी हों और अधिक उपज देने वाली हों। केवल यही नहीं, कृषि में विविधता लाने के लिए गैर-परंपरागत पौध-संसाधनों के बारे में भी अनुसंधान अपेक्षित है ताकि बढ़ती हुई आबादी के लिए खाद्य और पोषण की सुरक्षा प्राप्त की जा सके।

इस समय देश में 14.20 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में खेती की जा रही है। यह भूमि भी धीरे-धीरे कम होती जा रही है, और आबादी बढ़ती जा रही है। अनुमान है कि वर्ष 2025 में भारत की आबादी 125 करोड़ हो जाएगी, तब यदि वर्तमान उत्पादकता के आधार पर खाद्यान्न की जरूरतें पूरी करनी हों, तो उसके लिए 2025 तक कम से कम 3 करोड़ टन नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश की जरूरत पड़ेगी। यह उर्वरक भी तभी पर्याप्त माना जाएगा जब जैव उर्वरक और गोबर की खाद का पर्याप्त उपयोग किया जाए और यह सर्वत्र सामान्य रूप से उपलब्ध हो। अभी रासायनिक उर्वरकों के मामले में भारी असंतुलन है। जहां पंजाब में 167 किग्रा. उर्वरक प्रति हेक्टेयर इस्तेमाल किया जाता है, वहीं

4690 HRD/10—2 A

4690 HRD/10—2 B

असम में इसका इस्तेमाल सिर्फ 2 किग्रा. प्रति हेक्टेयर ही है।

दूसरी ओर तेजी से पैदावार बढ़ाने के चक्कर में भूमि से जितना पोषक तत्व लिया जाता है, उतना वापस नहीं लौटाया जाता है। यही वजह है कि आज हमारे देश के खेत की मिट्टी में करीब 5 लाख टन सल्फर की कमी है, जो 2025 तक 20 लाख टन हो जाएगी। उस समय मिट्टी को पर्याप्त उपजाऊ कहलाने के लिए 324 हजार टन जिंक, 130 हजार टन लोहा, 11 हजार टन तांबा, 22 हजार टन मैंगनीज और 4 हजार टन बोरोन की जरूरत होगी। जैव उर्वरक, कंपोस्ट, गोबर की खाद तथा फसलों के क्रम के सही चुनाव कुछ ऐसे तरीके हैं, जिनसे रासायनिक उर्वरकों की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है।

एक अनुमान के अनुसार 2035 तक कृषि-योग्य भूमि की उपलब्धता की 0.80 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति रह जाने की संभावना है। अत: बढ़ती हुई जनसंख्या की मांगों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि मृदा-क्षरण को रोका जाए तथा बेकार पड़ी बंजर, ऊसर, क्षारीय, अम्लीय तथा निम्नीकृत मृदाओं को सुधारा जाए। मृदा वैज्ञानिकों के अनुसार देश की आधी से ज्यादा खेती-योग्य जमीन किसी न किसी समस्या से ग्रस्त है। यह अनुमान नागपुर में स्थित राष्ट्रीय भूमि उपयोग और नियोजन ब्यूरो ने लगाया है। इस केंद्र में उपग्रह चित्रों की मदद से भारत के सभी राज्यों की भूमि के नक्शे बनाए गए हैं। अनुमान है कि देश की लगभग 13 करोड़ हेक्टेयर जमीन बंजर हो चुकी है। इन जमीनों को उपजाऊ बनाकर खेती लायक बनाने की तकनीकें मौजूद हैं, पर मुश्किल से 40 लाख हेक्टेयर जमीन ही सुधारी गई है।

अधिक उपज देने वाली फसलों और संकरों के प्रचलन के बाद, अधिक पैदावार और लाभ के लिए प्रतिस्पर्धा ऐसी बढ़ी कि हमारा ध्यान इस बात पर गया ही नहीं कि यह व्यवस्था कब तक चल पाएगी। इसी का नतीजा है कि ये सारी पद्धतियां जवाब दे चुकी हैं और उत्पादकता के स्तर को घटाने वाली नई-नई समस्याएं उभरने लगी हैं। इस तरह की कुछ समस्याएं हैं- पोषक तत्वों की दक्षता में कमी, मिट्टी में अनेक पोषक तत्वों का असंतुलन, मिट्टी के भौतिक, रासायनिक गुणों में प्रतिकूल परिवर्तन, पानी का दुरुपयोग, मिट्टी और पानी का प्रदूषण और कीटजन्य रोगों व खरपतवारों की समस्या। इन समस्याओं से निपटने के लिए जहां हम एक ओर फसलों की सघनता का ध्यान रख रहे हैं वहीं देश के विभिन्न भागों के लिए फलों को शामिल करते हुए ऐसी फसल पद्धतियां विकसित करने में लगे हैं जो हर हाल में टिकाऊ साबित हों। इनमें लागत की दृष्टि से लाभदायक फसल प्रबंध विधियां भी शामिल हैं। अधिक मूल्य वाली फसलों में चुने गए फसल-चक्रों में मुख्य रूप से सूरजमुखी, सोयाबीन, मूंगफली, सरसों, और बासमती धान इत्यादि शामिल किए गए हैं। इसी तरह कृषि की उत्पादकता और टिकाऊपन को ध्यान में रखते हुए समेकित पोषण और समेकित कीट प्रबंधन की तकनीकों का अधिकाधिक प्रचलन किया जा रहा है। पानी की बचत के लिए कृषि में प्लास्टिक उपकरणों के उपयोग द्वारा छिड़काव एवं रिसाव, सिंचाई पद्धति के उपयोग की संभावनाओं पर भी हम विशेष ध्यान दे रहे हैं।

सघन कृषि पद्धतियों के कारण मौलिक संसाधनों का अंधाधुंध इस्तेमाल हुआ है और मिट्टी में फसल के अवशेष शायद ही छोड़े जाते हैं। इस तरह मिट्टी में जीवांश की कमी होने से उसकी उपजाऊ शक्ति दिनोंदिन घटती जा रही है। इसी का नतीजा है कि गेहूं-धान, इत्यादि मुख्य फसल आधारित चक्रों में उपज का स्तर एक सीमा तक बढ़ने के बाद अब ठहराव पर पहुंच गया है। दीर्घकालीन उर्वरता परीक्षणों से भी यह सिद्ध हुआ है कि अकार्बनिक खादों के साथ-साथ जैविक खादों का उपयोग करने पर भी मिट्टी की उर्वरता को टिकाऊ स्तर पर बनाए रखा जा सकता है। चीन में गेहूँ-धान फसल चक्र में पिछले एक सौ साल से ज्यादा समय से उत्पादकता का ऊंचा स्तर बनाए रखने में इसलिए सफलता मिल पाई क्योंकि वहां नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए 50 प्रतिशत से अधिक नाइट्रोजन जैविक स्रोतों से प्राप्त की गई। इसी फसल-

पद्धति में हमारे यहां रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग ने तीन दशकों में ही ठहराव की स्थिति उत्पन्न कर दी। इससे समेकित पोषक तत्व प्रबंध के महत्व का पता लगता है।

कीटनाशी रसायनों के अंधाधुंध इस्तेमाल ने पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ कर अनेक कीट-व्याधियों को फिर से सिर उठाने का मौका देने के साथ-साथ कीटनाशियों की प्रतिरोधिता, पर्यावरण और खाद्य शृंखला के प्रदूषण तथा खाद्य शृंखला में कीटनाशियों के अवशेष का जहरीला स्तर पैदा करने की समस्याएं खड़ी कर दी हैं। समेकित पीड़क प्रबंधन (आई. पी. एम.) में यह देखा गया है कि कपास, धान, गन्ना, तंबाकू जैसी प्रमुख फसलों, तथा अनेक दलहनी और सब्जी वाली फसलों में कीट-व्याधियों से निपटने के लिए नियंत्रण की उपलब्ध तकनीकों का कारगर इस्तेमाल किया जा सकता है। कीटरोधी किस्मों, पेड़-पौधों से प्राप्त होने वाले कीटनाशी और विविध कीटव्याधियों का विशिष्ट रूप से नियंत्रण करने वाले जैव नियंत्रक अनेक फसलों में बहुत हद तक कामयाब पाए गए हैं। आई. पी. एम. का उपयोग करते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारा दृष्टिकोण पर्यावरण-मित्रता निभाने के साथ-साथ लागत-लाभ की ओर भी रहना चाहिए। यहां यह भी जरूरी है कि उष्णकटिबंधीय फसलों में कीट-व्याधियों की समस्या बहुत विकट बनी हुई है और यहां की गर्म जलवायु में कीटनाशी रसायन प्रकृति में जल्दी नष्ट होते हैं।

अनुसंधान के फल प्राप्त करने की दृष्टि से किसानों के लिए उपयोगी प्रौद्योगिकी का प्रसार करना आवश्यक है। इसके लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि विभिन्न जलवायु वाली परिस्थितियों की परिवर्तनशील आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकें उपलब्ध कराने के लिए इस समय प्रचलित कृषि विस्तार प्रणाली को बिल्कुल नया रूप दिया जाए। उपलब्ध प्रौद्योगिकी का प्रसार करना आवश्यक है। उपलब्ध प्रौद्योगिकी के स्तर का पूरा-पूरा लाभ उठाना, उसमें सुधार की जरूरत पूरी करना, किसानोपयोगी तकनीकों को खेतों तक पहुंचाना, समता, सामाजिक न्याय और सर्वांगीण विकास की दृष्टि से तकनीक के प्रभाव का विश्लेषण करना, ये सभी बातें प्रौद्योगिकी के प्रसार-कार्य की सफलता की कुंजी है। इसके लिए हमें अपने लक्ष्य भी स्पष्ट करने होंगे और अपनी सोच में भी बदलाव लाना होगा, जैसे कि

- किसान को केंद्र में रखते हुए राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रणाली का पुनर्गठन, जिसमें सूचना-संप्रेषण के विविध स्रोतों को काम करने का पूरा-पूरा मौका मिले।

- किसानों को शिक्षित करना, ताकि वे कृषि उत्पादन में विविधता और तीव्रता लाने के साथ-साथ व्यावसायीकरण में भी आगे बढ़ सकें और उपलब्ध अवसरों और चुनौतियों से शक्ति प्राप्त करने के लिए टिकाऊपन के मुद्दों को भी सुलझा सकें।

- विस्तार कार्यकर्ताओं के ज्ञान, समझ और कौशल का उन्नयन करना, ताकि वे कृषि को स्थानीय, क्षेत्रीय और भू-मंडलीय स्तरों पर स्पर्धापूर्ण बनाने में किसानों की मदद कर सकें।

- सरकारी क्षेत्र के कृषि विस्तार संबंधी प्रयासों में भागीदारी करके उनमें तीव्रता लाना और एक पूरक संस्था के रूप में सहायता के लिए गैर-सरकारी संगठनों, क्षेत्रों और किसानों की संस्थाओं को शामिल करना।

- किसानों और विस्तार कार्यकर्ताओं के ज्ञान और जानकारी में लगातार अभिवृद्धि सुनिश्चित करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी और संचार माध्यमों का सृजनात्मक रूप से उपयोग करना और अनुसंधान संस्थाओं तथा वैज्ञानिकों के साथ समुचित तालमेल स्थापित करना।

- विस्तार कार्य के नियोजन, सूचना के संप्रेषण और निगरानी के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हुए 'डाटा बेस' बनाना।

- विस्तार कार्य के प्रबंधकों और नियोजकों के लिए सफलता की गाथाएं इकट्ठी करके उनकी रिपोर्ट तैयार करना, ताकि वैसा ही दूसरी जगहों पर दोहराने में मदद मिले।

अनुसंधान सहायता के जरिए कृषि उत्पादन, खपत और निर्यात में वृद्धि लाने के लिए कृषि जन्य फसलों/प्रक्रियाओं/उत्पादों में विविधीकरण हुआ है। फसल कटाई के पश्चात् की प्रौद्योगिकियों के विकास और अनुप्रयोग से कृषि निर्यात में निरंतर वृद्धि हो रही है। हाल ही में कृषि निर्यात के मामले में बागवानी तथा मात्स्यिकी का क्षेत्र सबसे आगे रहा है। अगले 5-10 वर्षों में इसे मौजूदा 16 प्रतिशत से बढ़ाकर लगभग 20-25 प्रतिशत तक किया जा सकता है, बशर्ते कि इस दिशा में सभी आवश्यक उपाय किए जाएं।

'गैट' पर हस्ताक्षर करने तथा विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से जो विशाल निर्यात संभावनाएं सृजित हुई हैं उनसे पारंपरिक मदों के निर्यात को बढ़ाया जा सकेगा और नए क्षेत्रों में भी निर्यात के रास्ते खुलेंगे। फसलों में उच्च गुणवत्ता की कपास, बासमती चावल, जिसके मामले में भारत पहले ही एक प्रमुख निर्यातक के रूप में अग्रणी है, मक्का, बेहतर तंबाकू, तिलहन (तेलखली और ऑयलमील) आदि के निर्यात के अवसर भी मौजूद हैं। खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता प्राप्त कर लेने और उनका विशाल सुरक्षित भंडार तैयार कर लेने से गेहूँ से भारी संभावनाएं हैं जो अंतरराष्ट्रीय बाजार में अधिक दर पर बिकता है। इन सबके लिए हमें अपनी पत्तन-क्षमताओं को बढ़ाना होगा ताकि अंतरराष्ट्रीय मानक सुनिश्चित करते हुए हम बढ़े हुए निर्यात हेतु व्यवस्था कर सकें।

भारत के पास विशाल संसाधन संपदा मौजूदा है और इसकी नीतियां निर्यात-अनुकूल हैं। अत: हमें इस मजबूत स्थिति का लाभ निर्यात के क्षेत्र में उठाना चाहिए। साथ ही, हमें फसल कटाई के पश्चात् के उच्च गुणवत्ता एवं संगरोध मानकों को बनाए रखते हुए उनके संरक्षण, गुणवत्ता में वृद्धि के लिए प्रसंस्करण और विविध उत्पादों के संवर्धन पर ध्यान देना होगा।

हाल के वर्षों में बदलते मानकों, अवसरों एवं सीमित संसाधनों के चलते, कृषि शोध में उन्ही के अनुरूप नई तकनीकों के विकास की आवश्यकता है जिससे कि भविष्य में उत्पन्न चुनौतियों का डटकर मुकाबला किया जा सके। अनाज के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो जाने के बाद आज देश में ऊंची कीमत वाली फसलों के विविधीकरण की आवश्यकता है, जो कि न केवल सीमांत एवं छोटे किसानों की आय बढ़ाने में सहायक होगा वरन् कृषि पर आधारित उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल भी उपलब्ध कराएगा। इसके अतिरिक्त मांग के अनुरूप उत्पादन की जटिलता को सुलझाने हेतु आज तेज गति के कुशल सूचना संचार तंत्र की आवश्यकता है जिससे कि तकनीकी के आविष्कार एवं उसके प्रयोग में लगने वाले समय को घटाया जा सके।

संक्षेप में, इन चुनौतियों से निपटने के लिए हमें निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने वाली ऐसी प्रौद्योगिकियां विकसित करनी होंगी,

- जो अति विविधतापूर्ण जैव, भौतिक और सामाजिक-आर्थिक दशाओं के अनुकूल हों।
- जिनसे कृषि में विविधीकरण लाने के लिए वैकल्पिक तथा गैर-परंपरागत संसाधनों की गवेषणा की जा सके ताकि भोजन, ईंधन, चारा और रेशा आदि की आपूर्ति में अति वांछित खाद्य और पोषण सुरक्षा प्राप्त की जा सके।
- जो टिकाऊ हों, आर्थिक दृष्टि से सक्षम हों और किसानों को स्वीकार्य होने के साथ-साथ पर्यावरण हितैषी हों और मिट्टी पानी पर्यावरण तथा जीवाश्म ईंधनों का संरक्षण करें।
- जो फसल उत्पादन में जैव उर्वरकों का उपयोग बढ़ाती हों।
- जो कृषि में ऐसे रसायनों का उपयोग बढ़ाने में सक्षम हों जो पर्यावरण की जैविक क्रियाओं से ही नष्ट हो जाएं।
- जो आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के आधार को मजबूत करते हुए अधिक उपज देने वाली, रोगरोधी, कीटरोधी तथा अन्य अजीवीय दबावों की प्रतिरोधी तथा कृषि आदानों के प्रति अधिक दक्षता प्रदर्शित करने वाली फसल और बागवानी की किस्मों का विकास करने में समर्थ हों ताकि उत्पादन की बुनियाद शक्तिशाली बनी रहे।
- जो ग्रामीण गरीबों और भूमिहीनों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में सक्षम हों।
- जो वास्तविक मूल्यांकन के लिए और कृषि विकास की बारीकियों के बारे में हमारे ज्ञान को उन्नत करने के लिए समाज विज्ञान की विभिन्न विधाओं में अनुसंधान को मजबूत बना सकें।
- जिनसे अनाज और शीघ्र नश्च फसलों को बरबादी से बचाने के लिए परिवहन और भंडारण की ऐसी तकनीकें विकसित हों, जिनसे वे देर तक ताजा और टिकाऊ रहें।
- जो ऊर्जा का दक्षतापूर्वक उपयोग करने वाली कृषि पद्धतियां विकसित करने वाली हों।

इस प्रकार सार-रूप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त प्रौद्योगिकियों को अपनाकर हम न केवल भारतीय कृषि की वर्तमान चुनौतियों का मुकाबला करने में सक्षम होंगे अपितु हम इनके द्वारा भारतीय कृषि को एक नया आयाम देकर भारत को समृद्धशाली और खुशहाल देश बना सकते हैं।

❑

विश्वविद्यालय-स्तरीय पुस्तकों का निर्माण एवं प्रकाशन

आयोग ने राज्य स्तरीय ग्रंथ-निर्माण बोर्डों और ग्रंथ अकादमियों के माध्यम से अब तक हिंदी में लगभग 3,100 पाठ्य-पुस्तकों और अन्य भारतीय भाषाओं में लगभग 11,000 पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण किया गया है। कृषि, आयुर्विज्ञान और इंजीनियरी विषयों में आयोग ने स्वतंत्र रूप से लगभग 450 पुस्तकों का निर्माण अलग से किया है। छात्रों के लिए उपयोगी अध्ययन सामग्री के रूप में आयोग ने हिंदी में अब तक लगभग 40 चयनिकाओं और पाठमालाओं का भी प्रकाशन किया है।

इन प्रयासों के परिणामस्वरूप अब विश्वविद्यालय स्तर पर सभी विषयों का पठन-पाठन और परीक्षाओं को हिंदी माध्यम से चलाया जा सकता है। इस दिशा में अन्य भारतीय भाषाओं में भी आयोग प्रगति की ओर अग्रसर है।

2

मधुमक्खी पालन : उद्योग के रूप में

डॉ. प्रेम किशोर, विनीता मित्तल एवं गणेश राय

हमारा देश मुख्यतः कृषि प्रधान देश है। संभवतः कोई अन्य विकेंद्रित उद्योग उतना उपयुक्त नहीं है जितना कि मधुमक्खी पालन, क्योंकि यह किसानों की आय में वृद्धि करता है छोटी मधुवाटिका रखने वाले कामगरों को अंशकालीन रोजगार प्रदान करता है तथा कुछ सौ मधुमक्खी निवहों (कॉलोनियों) वाली व्यापारिक मधुवाटिका रखनेवालों को पूर्णकालीन रोजगार प्रदान करता है। मधुमक्खी पालन मधुमक्खी पालकों को केवल शहद ही नहीं प्रदान करता बल्कि यह परागण क्रिया द्वारा कृषि और बागवानी फसलों की उपज को भी बढ़ाता है। मधुमक्खी द्वारा किए जाने वाले परागण से पैदावार में होने वाली वृद्धि से मधुमक्खीपालक की आय में जो वद्धि होती है वह उसके द्वारा उत्पादित शहद के मूल्य से बहुत अधिक होती है। अतः शहद और अत्यधिक उपज के कारण मधुमक्खियां किसानों की सर्वोत्तम हितैषी हैं।

मधुमक्खी उद्योग गैर-परंपरागत उद्योग है। इससे कई लोग जीविका प्राप्त करते है। इसका परोक्ष लाभ यह है कि इससे प्राप्त कृषि और बागवानी फसलों की उपज इसके परोक्ष उत्पाद यानी शहद से 10-25 गुना अधिक होती है। यह उन व्यवसायों में से एक है जिनमें कम निवेश की आवश्यकता होती है। मधुमक्खी निवहों को बेहतर वानस्पतिक वातावरण प्रदान करने के उद्देश्य से कम वनस्पति वाले स्थानों से बहुतायत में उपलब्ध मकरंद और पराग देने वाले पौधे रखने वाले स्थानों को स्थानांतरित किया जा सकता है। अगर शहद के लिए मौसम उपयुक्त हो तो पूंजी निवेश की प्रतिप्राप्ति दो वर्षों में हो सकती है।

मधुमक्खी पालन की संभावनाएं

देश की लगभग पांच करोड़ हेक्टेयर भूमि तिलहनों, दलहनों, फलोद्यानों और अन्य फसलों के अंतर्गत है जो मधुमक्खियों के लिए उपयोगी है तथा जिन्हें मधुमक्खी से परागण का लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त हमारे पास मधुमक्खी पालन की संभावना के लिए वनों की लगभग छह करोड़ हेक्टेयर भूमि है। यदि केवल शहद का ही उत्पादन करना हो तो कृषि वनों के इस विशाल क्षेत्र में आसानी से कम से कम एक करोड़ मधुमक्खी निवह बनाए जा सकते हैं। यदि कृषि और बागवानी फसलों में परागण की अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है तो हमें इससे कई गुना अधिक मधुमक्खी निवहों की आवश्यकता होगी। वर्ष 1953 की तुलना में मधुपक्खी पालन में आज कई सौ गुना वृद्धि हुई है। खादी और ग्रामोद्योग के अंतर्गत मधुमक्खी निवहों और मधुमक्खी-पालक सहकारी संस्थाओं की संख्या क्रमशः 810807 और 169 हो गई है। कृषि विश्वविद्यालयों और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तत्वावधान में अनेक मधुमक्खी पालन केंद्रों का विकास हुआ है।

'मधुमक्खी पालन' लकड़ी की विशेष रूप से निर्मित 'मधुमक्खी पेटियों' में भारतीय मधुमक्खी *एपिस सिराना* या विदेशी मधुमक्खी *एपिसमेलिफोरा* के पालन की ओर संकेत करता है। उस स्थान को जहां लकड़ी की पेटियों में मधुमक्खी निवहों को रखा जाता है 'मधुवाटिका' के नाम से जाना जाता है। उस व्यक्ति को जो इसकी देख-रेख करता है तथा मधुमक्खी-पालन जानता है उसे मधुमक्खी-पालक कहा जाता है। मधुमक्खी पालन को मौनपालन भी कहते हैं (चित्र 1,2,3,4)

मधुमक्खी पालन के लाभ

- मधुमक्खियों द्वारा उत्पन्न शहद आमदनी का अच्छा स्रोत है।
- इससे अनेक उत्पादों, जैसे कि मोम, से अच्छी आमदनी मिलती है।
- मधुमक्खियां विष और रायॅल जेली उत्पन्न करती हैं। इनका औषधीय महत्व है और इनसे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।
- मधुमक्खी या परपरागण द्वारा फसल की उत्पादकता 6 से 30 प्रतिशत बढ़ाती हैं।
- इनकी देखभाल सरलता से हो पाने के कारण इनसे युवाओं/छात्रों, खेतिहर महिलाओं अथवा मजदूर महिलाओं को रोजगार मिलता है।
- मधुमक्खियां स्वयं भी आमदनी की स्रोत हैं। उद्योग को बढ़ाने के लिए नई पेटियों और मधुमक्खी निवहों की बिक्री की जाती है।
- शहद निकालने के लिए जब पेटियों को खोला जाता है तो गहरी भूरे रंग की पतली रेजिन के समान रालाभ गोंद (प्रोपोलिस) मिलती है। मधुमक्खियां इसे पेड़ों से लाती हैं और इसका उपयोग पेटियों की दरारों को बंद करते अथवा पेटी के भागों को चिपकाने में करती हैं। इसका उपयोग दीवारों की पॉलिश करने, त्वचा के घाव भरने और अनेक औषधीय रूपों में किया जाता है।
- मधुमक्खियां मोम का उत्पादन तरल स्राव के रूप में करती हैं जो पतली पर्त के रूप में जमा होता है। मधुमक्खियां अपने पैरों की सहायता से उसे हटाती हैं और दांतों की सहायता से गूंथती हैं, जिसका उपयोग मधुकोष्ठ या कोशिका बनाने में होता है। एक वर्ष में एक पेटी से 300 ग्राम स्वच्छ मोम प्राप्त हो सकता है जिसका मूल्य 80 से 100 रुपए किलोग्राम तक होता है। इस मोम का उपयोग छत्ते की शीट, औषधि, महंगी पालिश और वार्निश बनाने में होता है।
- मधुमक्खियां पराग एकत्र करके उसे छत्ते की कोशिकाओं में भरती हैं, साथ ही कुछ शहद भी इसमें छोड़ती हैं जिससे यह ढीली पावरोटी या लोई के समान हो जाता है जो नए लारवों को खिलाने के काम आता है।
- पराग एक महंगा निवेश है जिसका मूल्य बाजार में अधिक होता है। मधुमक्खियां पराग को अपने पिछले पैरों की सहायता से एकत्र करती है। यह पराग उनकी आवश्यकता से अधिक होता है। अतिरिक्त पराग को पेटी के प्रवेश मार्ग पर पराग ट्रैप लगाकर एकत्र किया जा सकता है। जब मधुमक्खी ट्रैप से गुजरेगी तो पराग बिखर जाएगा जिसे पात्र में एकत्र किया जा सकता है। इसकी कीमत 70 से 100 रु. प्रति किलोग्राम तक होती है।

मधुमक्खी पालन का आर्थिक पक्ष

मधुमक्खी पालन ऐसा उद्यम है जिसे प्रारंभ करने के लिए कम निवेश की आवश्यकता होती है। इसे बड़ी या छोटी इकाई के रूप में जरूरत के अनुसार शुरू किया जा सकता है। मधुमक्खी पालन यदि 10 कालोनियों से प्रारंभ किया जाए तो अच्छा रहता है। इसके निम्नलिखित लाभ हैं :

- मधुमक्खी पालन के संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलती है।
- छोटे किसानों अथवा मधुमक्खी-पालकों के लिए फार्म पर (मधुमक्खियों के लिए भी) वनस्पति उपलब्ध कराना सरल होता है।

- विपरीत मौसम में मधुमक्खियों का प्रबंधन सरलता से किया जा सकता है।
- बिना किसी मजदूर के स्वयं ही देखभाल की जा सकती है।
- शुद्ध शहद प्राप्त करना आ जाता है। ऐगमार्क प्राप्त कर शहद को बाजार में बेचने की जोखिम कम हो जाती है।
- शहद की शुद्धता के कारण ब्रांड प्रचलन सरलता से हो जाता है।
- कम निवेश के कारण वित्त की व्यवस्था सरलता से हो जाती है।
- 10 बक्सों के लिए राज्य सरकार द्वारा दी जा रही वित्त-संबंधी सुविधाएं उपलब्ध हो जाती हैं।

मधुमक्खी पालन के लिए दस निवहों (कॉलोनियों) को लगाने पर अनुमानित व्यय

वितरण	दर (रुपए)	मात्रा (संख्या)	कुल खर्च (रुपए)
क. अनावर्ती व्यय	1000	10	10000
द्विकोष्ठीय मधुमक्खी पेटी (कैल की लकड़ी) न्यूक्लियस (आरंभक) कॉलोनियां	480	10	4800
(प्रत्येक 4 फ्रेम वाला) लोहे का स्टैंड	50	10	500
शहद निस्सारक	1000	1	1000
मधुमक्खी जाली, दस्ताने, पेटी औजार, धुंआकारक, ब्रुश, चाकू आदि।	500	1 सेट	500
रानी अलग करने वाला उपकरण	60	10	600
शहद के टिन	25	6	150
उपयोग			17,550
ख. आवर्ती खर्च	**दर (रुपए)**	**मात्रा (किग्रा.)**	**कुल खर्च (रुपए)**
छत्ता आधार शीट			
चीनी (2 किलोग्राम/कॉलोनी)	7 रुपए/शीट	60	1,120
जाड़े के लिए पैकिंग	16 रुपए/किग्रा	20	320
गंधक (100 ग्राम/बक्सा)	10 रुपए/कालोनी	10	100
कुल योग	30 रुपए/किग्रा	1	30
कुल योग			**1,570**
ग. सकल आय	**दर (रुपए)**	**मात्रा (किग्रा.)**	**कुल खर्च (रुपए)**
शहद (15किग्रा./कॉलोनी)	50 रुपए/किग्रा	150	7,500
बढ़ी हुई कॉलोनियों की बिक्री	480/कालोनी	5	2,400
मोम (300 ग्राम/कॉलोनी)	60 रुपए/किग्रा	3	180
कुल सकल आय			**10,080**
घ. शुद्ध लाभ			
सकल आय			10,080
(अनावर्ती व्यय सम्मिलित नहीं है)			
आवर्ती व्यय			1,570
शुद्ध लाभ			**8,510**

अगर उपर्युक्त आर्थिक विश्लेषण को देखा जाए तो निम्नलिखित लाभों के कारण मधुमक्खी-पालन लाभदायक और प्रासंगिक है :

- यह कृषि-संबंधी कार्यों में बाधा नहीं डालता।
- इसके लिए अतिरिक्त स्थान की आवश्यकता नहीं होती। पेटियों को मेड़ों, रास्ते या जलनिकासी वाली नालियों पर भी रखा जा सकता है।
- किसान अपने अतिरिक्त समय को इसमें लगा सकते हैं।
- मधुमक्खियां शहद और मोम के उत्पादन के साथ-साथ फसल का परागण कर उसकी उपज में वृद्धि करती हैं।

मधुमक्खी-पालन संबंधी उपकरण

मधुमक्खी पेटी

हमारे देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की मधुमक्खी पेटियां प्रचलित हैं। हाल ही में भारतीय मानक ब्यूरो ने उद्योग में इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरणों के लिए बुनियादी मद के आमापों को मानकीकृत किया है। इन्हें आई. एस. आई. 'ए' और आई एस आई 'बी' किस्म की पेटियों के नाम से जाना जाता है। 'ए' किस्म की पेटियां आकार में छोटी होती हैं तथा केंद्रीय और दक्षिणी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती हैं। 'बी' किस्म की पेटियां उत्तरी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती हैं। हिमालय की घाटी और कश्मीर में लांगस्ट्रोथ कही जाने वाली बड़े आकार की पेटियों का उपयोग होता है।

मधुमक्खी पटा में एक फर्शी तख्ता, एक शाव (ब्रूड) कक्ष, एक या दो बाहरी कक्ष, एक भीतरी आवरण और एक छत होती है। दोनों कक्षों में भिन्न-भिन्न गहराई वाले लकड़ी के मानकीकृत फ्रेम होते हैं। कॉलोनियों को इन पेटियों में स्थानांतरित करते समय छत्ते को प्राकृतिक स्थान से हटाकर इन फ्रेमों में लगाया जाता है। अंडे, लार्वे और बच्चे वाले छत्ते के भाग को शाव फ्रेम (ब्रूड फ्रेम) से जोड़ दिया जाता है। कभी-कभी बिना छत्ते के झुंडों में मधुमक्खियां रहती हैं। अच्छे मौसम में वे छत्ते बना लेती हैं और प्रजनन तथा शहद एकत्र करना आरंभ कर देती हैं।

नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा मधुमक्खियां छत्ते के ऊपरी भाग में शहद एकत्र करती हैं। अत: बाहरी कक्ष को शाव कक्ष के ऊपर रखा जाता है। जब खेतों में भरपूर मकरंद उपलब्ध होता है तब मधुमक्खियां उसे एकत्र करती हैं, शहद में परिवर्तित करती हैं और बाहरी कक्षों में जमा करती हैं। इस शहद को बाहरी फ्रेमों से शहद निस्सारक द्वारा छत्ते को क्षति पहुंचाए बगैर निकाला जा सकता है (चित्र 5 से 13)

शहद निस्सारक

यह एक ढांचा है जिस पर शहद भरे बाहरी फ्रेम रखे जाते हैं। यह गियर और हैंडल से चलने वाले घूर्णी यंत्र के साथ मेटल ड्रम में फिट रहता है। जब इस ढांचे, जिस पर खुला शहद छत्ता (बाहरी फ्रेम) होता है को घुमाया जाता है तब शहद केंद्र अपकेंद्रण बल द्वारा ड्रम के भीतरी दीवार पर फेंक दिया जाता है और नीचे एकत्र हो जाता है। इस प्रकार एकत्रित शहद निर्गम द्वारा बाहर निकाल लिया जाता है।

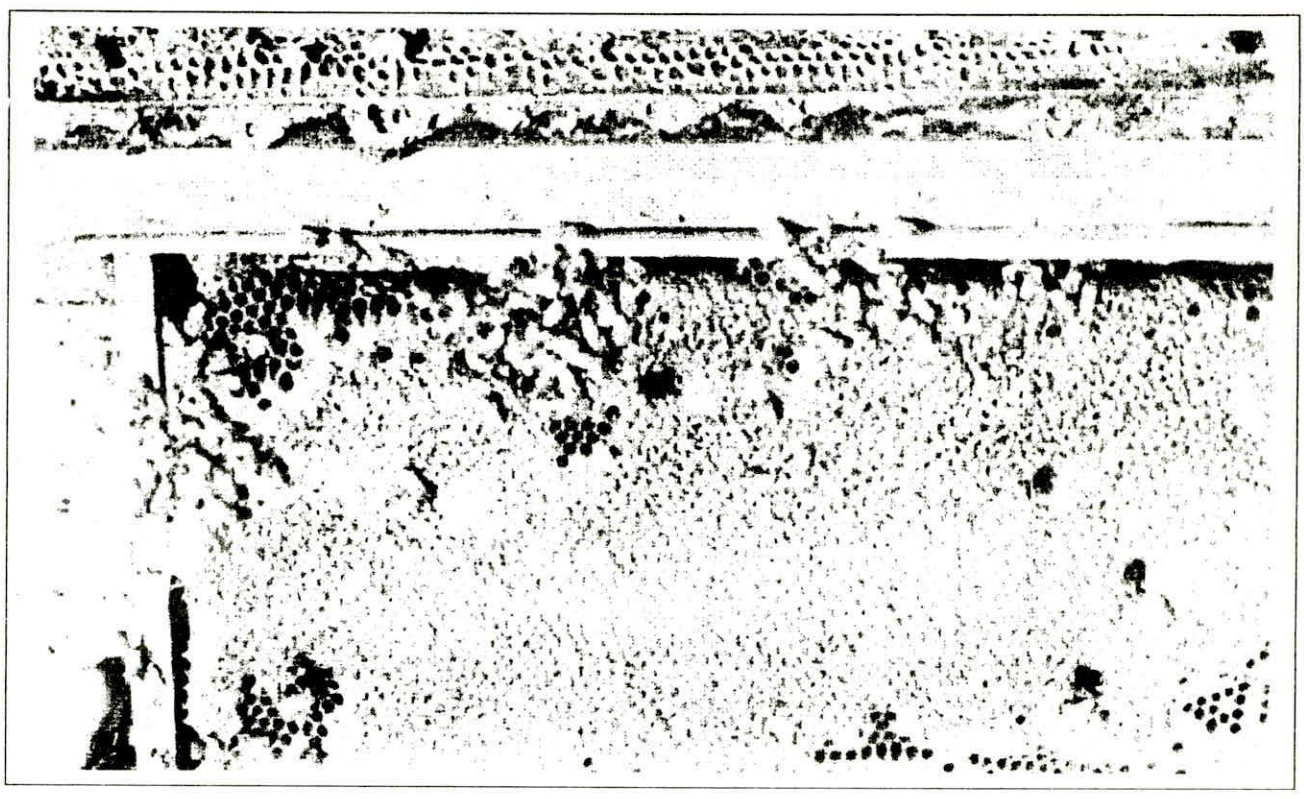

चित्र-1 : शहद से भरा मधुमक्खी का छत्ता

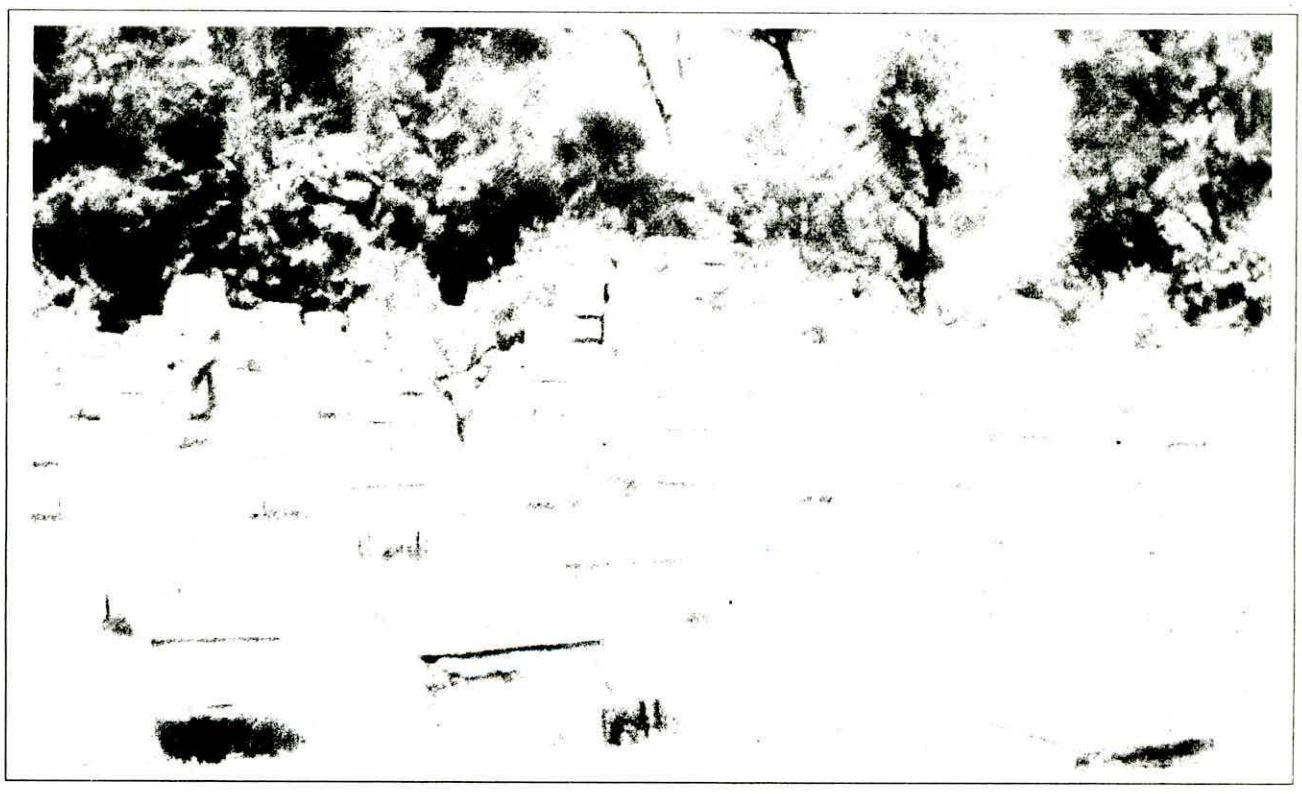

चित्र-2 : बड़े पैमाने पर मधुमक्खी-पालन

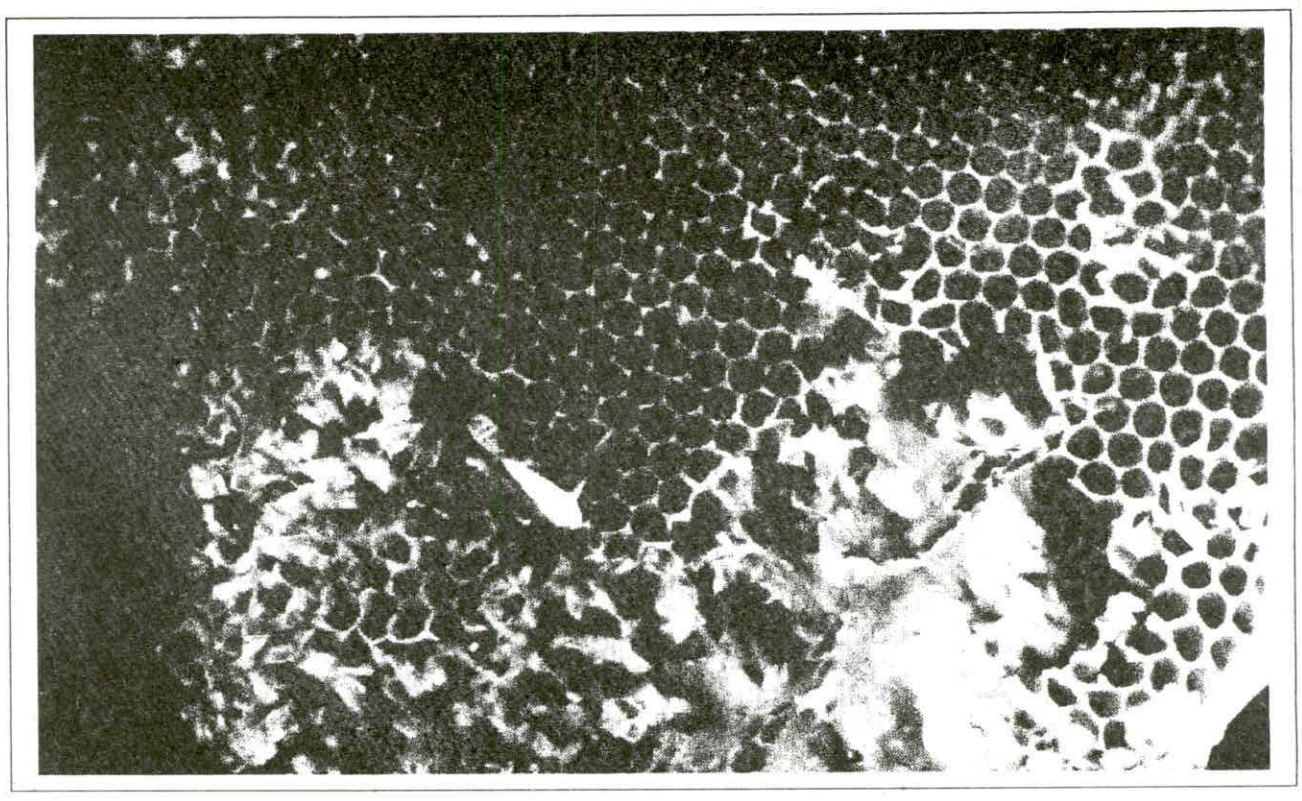

चित्र-3 : मधुमक्खी के छत्ते पर बर्र का प्रकोप

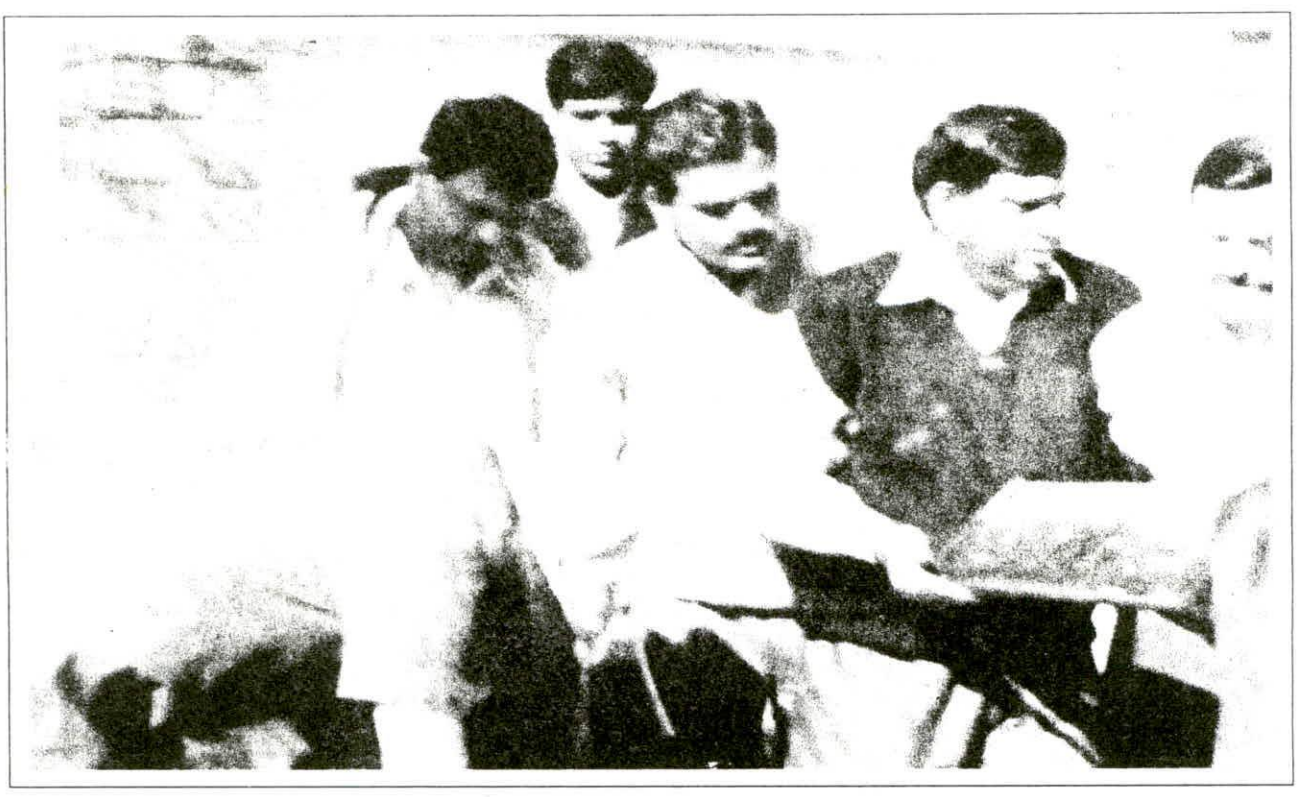

चित्र-4 : मधुमक्खी के छत्तों का फ्रेम

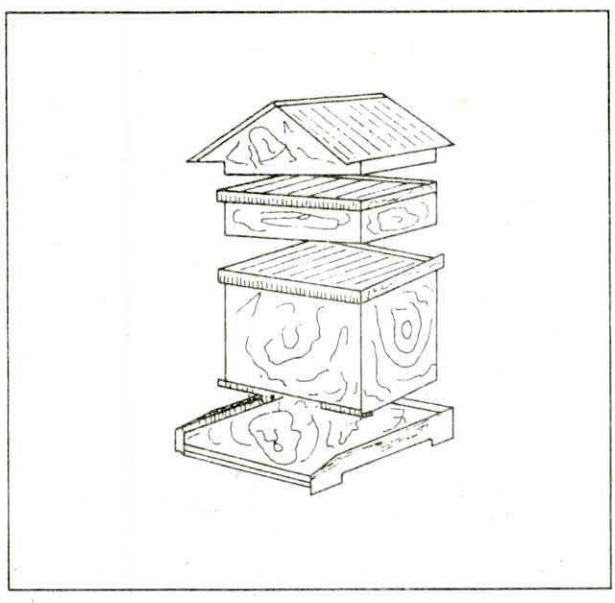

चित्र-5 : न्यूटन पेटी

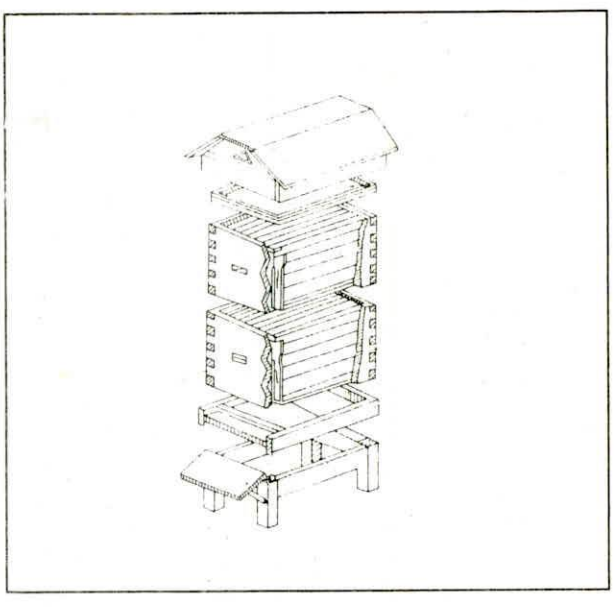

चित्र-6 : लांगस्ट्रोथ पेटी

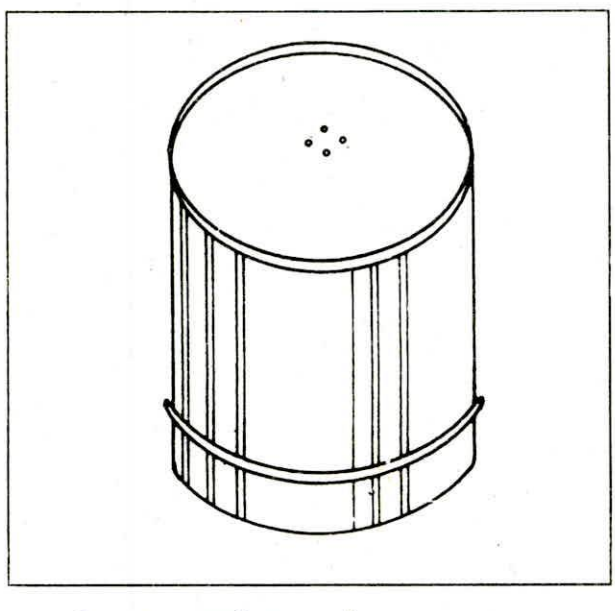

चित्र-7 : पानी का बर्तन

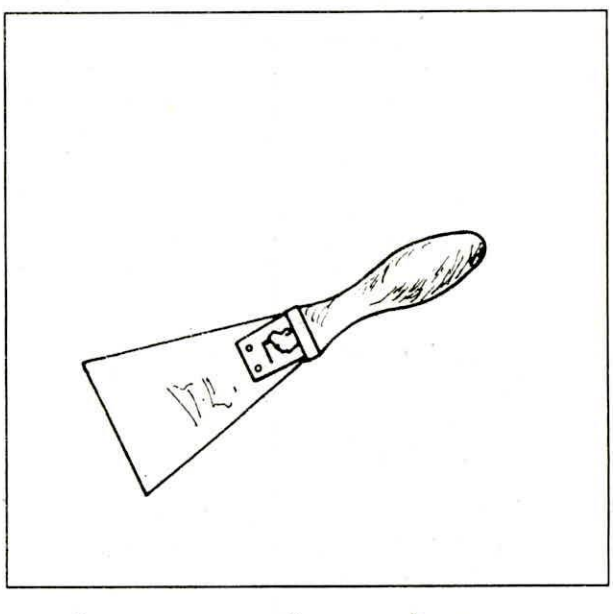

चित्र-8 : मधुमक्खी-पालन के उपकरण

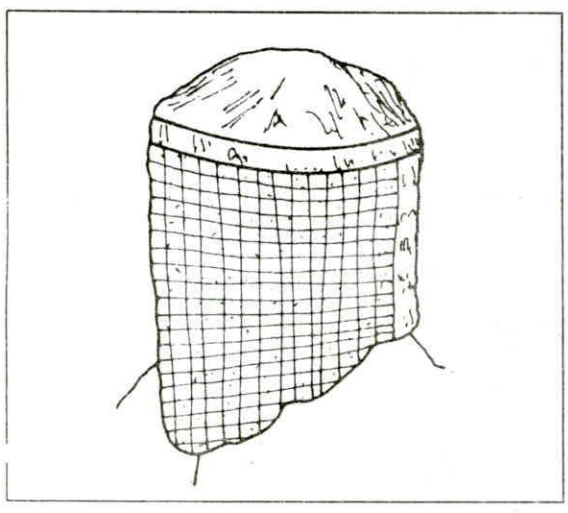

चित्र-9 : मुंह पर लगाने वाली जाली

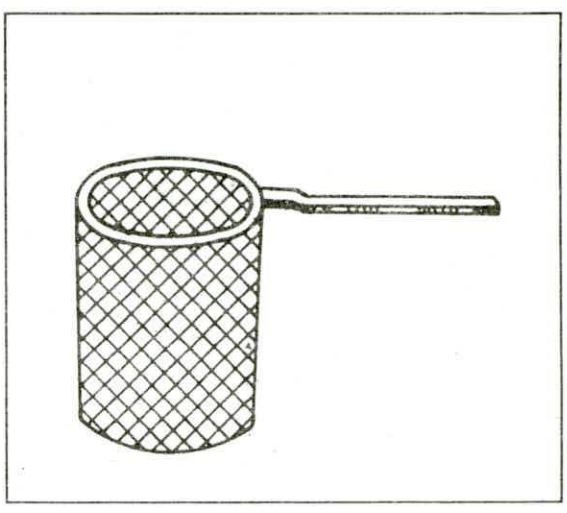

चित्र-10 : मधुमक्खी पकड़ने का जाल

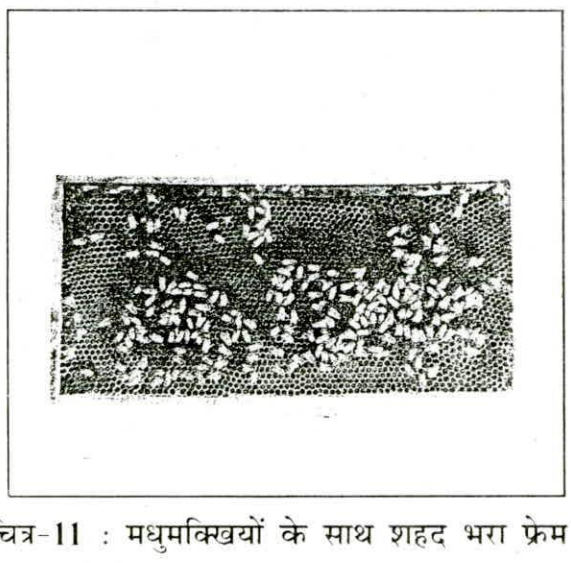

चित्र-11 : मधुमक्खियों के साथ शहद भरा फ्रेम

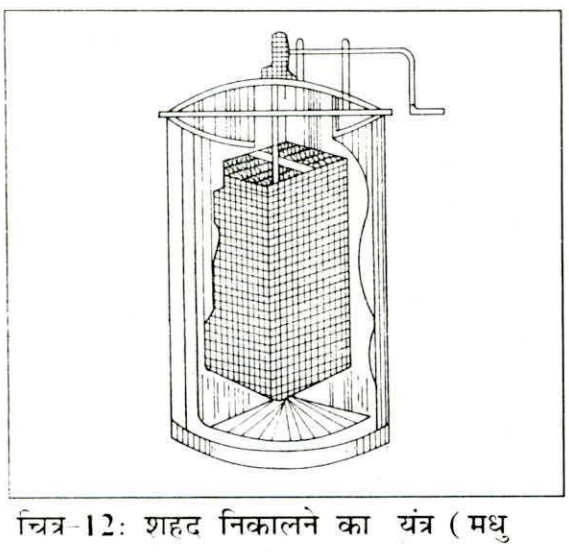

चित्र-12: शहद निकालने का यंत्र (मधु निस्मारक)

चित्र-13 : धुआं देने वाला यंत्र

शहद निस्सारक "त्रिज्य" और "स्पर्शरेखीय" प्रकार के होते हैं। सामान्यत: त्रिज्य निस्सारक का अधिक उपयोग होता है। भारतीय मानक ब्यूरो ने शहद निस्सारकों का मानक निर्धारित किया है।

धुएं का डिब्बा

यह 2 से 5 सेमी व्यास तथा 15 सेमी ऊंचाई वाला धातु का पात्र होता है जिसमें एक संकरा निकासी ढक्कन तथा हवा देने के लिए भाथियां होती हैं। इसमे महीन चिथड़े रखे जाते हैं और ढक्कन लगा दिया जाता है। जब भाथियां काम करती हैं तो धुएं का नियंत्रित झोंका निकासी द्वार से बाहर निकलता है। इसका उपयोग कॉलोनियों की जांच करते समय मधुमक्खियों को शांत करने के लिए किया जाता है।

अन्य उपकरण

नंगे हाथ से मधुमक्खियों को इधर-उधर नहीं करना चाहिए। इसके लिए डंक-सह रबर के दस्ताने, चेहरे को ढकने के लिए पर्दा (जाली) तथा मधुमक्खी रोधी वस्त्रों का उपयोग करते हैं। मधुमक्खी पालकों के लिए आवश्यक तथा उनके द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले अन्य उपकरण निम्नलिखित हैं :

मधुमक्खी चाकू : छत्ते को चीरने तथा शहद की परत को खोलने के लिए कभी-कभी मधुमक्खी चाकू के साथ भाप का पाइप लगा दिया जाता है ताकि वह गरम रहे और उसमें मोम न चिपके।

छत्ता औजार : इसका उपयोग पेटी तथा उसके अंदर के भाग को साफ करने के लिए होता है।

रानी द्वार : यह धातु की बनी एक खांचदार चादर होती है जिसका उपयोग रानी को पेटी से बाहर जाने से रोकने के लिए होता है। चूंकि रानी बड़ी होती है इसलिए छिद्र से कमेरी मधुमक्खियां तो बाहर जाती हैं लेकिन रानी नहीं जा पाती। यह नई प्राप्त कॉलोनियों में लगाने के लिए उपयोगी है।

सौर मोम निस्सारक : इसका उपयोग पुराने छत्तों से मोम निकालने के लिए होता है।

अन्य चीजें जैसे वायर इम्बेडर, रानी पिंजड़ा, रानी पालन उपकरण आदि का उपयोग विशिष्ट परिचालन के समय होता है।

कृत्रिम छत्ता बनाने की चादरें मधुमक्खी के मोम से तैयार की जाती है। इन चादरों को छत्ते बनाने में आधार के रूप में चौखटों में लगाया जाता है। ये मधुमक्खियों द्वारा अपना छत्ता तैयार करने में लगने वाले समय की बचत करने में सहायक होती हैं। इस प्रकार मधुमक्खी-पालक, शहद का अधिकतम उत्पादन प्राप्त करते हैं।

3

आम के प्रमुख विकार, कीट एवं रोग तथा उनके नियंत्रण के उपाय

– डॉ. राम रोशन शर्मा

फलों का राजा और जन-समान्य का प्रिय फल आम एक ऐसा फल है जो अपने सुंदर रंगों, स्वादिष्ट और सुगंधित गुणों के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध है। यह एक भारतीय फल है। अनुमानत: भारत में इसकी बागवानी 4000 वर्षों से की जा रही है। विभिन्न विकारों, कीटों और व्याधियों के कारण इसकी उत्पादकता प्रतिवर्ष कम होती जा रही है जो अत्यंत चिंता का विषय है। प्रस्तुत लेख में आम के विकारों, कीटों और व्याधियों तथा उनके नियंत्रण के उपायों के बारे में अच्छी जानकारी दी गई है।

आम एक ऐसा फल है जो अपने सुंदर रंगों, स्वादिष्ट व सुगंधित गुणों के कारण विश्व में प्रसिद्ध है। कौन-सा रंग, गंध, स्वाद व आकार आम में नहीं मिलता? यह भारत का प्राचीनतम फल है और हमारे देश की सभ्यता एवं इतिहास से सबसे अधिक जुड़ा है। अनुमान है कि हमारे देश में आम की बागवानी 4000 वर्षों से की जा रही है। ऊंचे पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर आम की बागवानी संपूर्ण भारत में की जाती है। हमारे देश में उगाए जाने वाले फलों के अंतर्गत आम सबसे अधिक क्षेत्रफल में उगाया जाता है। हालांकि आम के अंतर्गत क्षेत्रफल लगातार बढ़ता जा रहा है परंतु यदि आंकड़ों पर ध्यान दिया जाए तो पता चलता है कि इसकी उत्पादकता प्रतिवर्ष कम होती जा रही है जो चिंतनीय विषय है। कम उत्पादकता हेतु वैसे तो कई कारण हैं परंतु इसे कई क्रियात्मक विकार, कीट व रोग दुष्प्रभावित करते हैं जो कम उत्पादकता के प्रमुख कारण हैं। इस लेख में आम के क्रियात्मक विकारों, कीटों, रोगों एवं उनके नियंत्रण के उपायों की चर्चा की जा रही है।

आम के क्रियात्मक विकार

आम में कुछ विकार बहुत हानि पहुंचाते हैं। उत्तरी भारत में आम के बागों में पाए जाने वाले प्रमुख विकार निम्नलिखित हैं :

1. गुच्छा रोग

यह उत्तरी भारत में आम की प्रमुख समस्या है। इस विकार में पेड़ों की शाखाओं एवं पुष्पक्रमों की बनावट विकृत हो जाती है। नई शाखाएं व पुष्पक्रम गुच्छों के रूप में परिणत हो जाते हैं। शाखा गुच्छ रोग अधिकतर नर्सरी के छोटे पौधों में पाया जाता है, परंतु बड़े वृक्षों पर भी यह रोग देखा जा सकता है। पुष्पक्रम गुच्छ रोग में सारे पुष्प गुच्छों का रूप धारण कर लेते हैं। बाद में कभी-कभी इन गुच्छों में से छोटी-छोटी पत्तियां निकल आती हैं। इन गुच्छों में फल नहीं आते हैं। व्याधियों के कारणों का अभी तक ठीक तरह से पता नहीं लग पाया है, लेकिन प्रभावित पुष्पों में स्वस्थ पुष्पों की अपेक्षा ऑक्सीजन-जैसे पदार्थों की कमी व निरोधक पदार्थों

की अधिक मात्रा पाई है। रोकथाम के लिए विकृत भागों को काटकर नष्ट कर देना चाहिए। अक्टूबर के महीने में 200 भाग ऐल्फा नैप्थलीन ऐसीटिक अम्ल प्रति 10 लाख भाग पानी में मिलाकर छिड़काव करने से उपज बढ़ाई जा सकती है। सर्वप्रथम निकलने वाले पुष्प गुच्छों को हाथ से तोड़ देना चाहिए। यह कार्य मंजरियों के 1 या 2 सेमी. लंबा होने से पूर्व ही करना चाहिए। ऐसा करने से प्ररोह के ऊपर कक्षस्थ कलिकाएं बढ़ने लगती हैं और वे दो सप्ताह में मंजरी का रूप ले लेती हैं। ऐसी मंजरियों में फल लगते हैं।

2. काला सिरा या कोयली रोग

यह रोग आम के उन बगीचों में पाया जाता है जो ईंट के भटठों से दो किलोमीटर की दूरी पर पाए जाते हैं। प्रभावित फलों के दूरांत पर भूरे रंग का जलशोषित धब्बा बन जाता है जो बाद में गहरे भूरे रंग का हो जाता है। फल सड़ने लगते हैं। पहले गूदा पीला पड़ जाता है जो बाद में गहरे भूरे रंग का हो जाता है। कभी-कभी फल फट भी जाते हैं। रोकथाम के लिए आम के बाग को ईंट के भट्ठों से दूर लगाना चाहिए। भट्ठों में 50 मीटर ऊंची चिमनी का प्रयोग करके भी रोग के फैलाव को रोका जा सकता है। अप्रैल-मई माह में रोग प्रारंभ होने से पूर्व सोडियम बाइकार्बोनेट अथवा बोरैक्स के 0.6 प्रतिशत घोल के 10 दिन के अंतर पर 2-3 छिड़काव करने चाहिए।

3. आंतरिक ऊतकक्षय

यह रोग बोरॉन की कमी से होता है। प्रभावित क्षेत्र में आम के फलों में गुठली की सतह से भूरे रंग का धब्बा बढ़ जाता है। पहले गुठली सड़ती है उसके बाद गूदा सड़ने लगता है। पहले सड़े भागों का रंग भूरा होता है तथा बाद में काला पड़ जाता है। कभी-कभी फल फटकर गिरने भी लगते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए अप्रैल-मई के महीने में 10 दिन के अंतर पर बोरैक्स के एक प्रतिशत घोल के तीन छिड़काव करने चाहिए। इसके अतिरिक्त यह तत्व भूमि में भी दिया जा सकता है। भूमि में प्रयोग करने के लिए लगभग 250 से 500 ग्राम बोरैक्स प्रति पेड़ की दर से फरवरी-मार्च के महीने में प्रयोग करना चाहिए।

4. पत्तियों का झुलसना

यह विकार पत्तियों में क्लोराइड लवण की अधिकता से होता है जिसके परिणामस्वरूप पत्तियों में पोटाश का स्तर कम हो जाता है। सबसे पहले पत्तियों का अगला भाग ईंट की तरह लाल रंग का हो जाता है और बाद में यह बीमारी पूरी पत्ती पर फैल जाती है। फलस्वरूप पत्तियां सूखकर गिरने लगती हैं और संपूर्ण वृक्ष पर्णरहित दिखाई पड़ने लगता है। इसकी रोकथाम के लिए गिरी हुई पत्तियों को पेड़ के नीचे से हटाकर जला देना चाहिए। पोटैशियम क्लोराइड की जगह पोटैशियम सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। सिंचाई के पानी में क्लोराइड की मात्रा कम होनी चाहिए।

5. स्पंजी ऊतक

महाराष्ट्र में उगाई जाने वाली अल्फान्सो किस्म के आम में यह विकार अधिक पाया जाता है। इस विकार के कारण हमारा आम का निर्यात बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इस विकार से ग्रसित फल बाहर से तो स्वस्थ दिखाई देते हैं परंतु गूदे का कुछ भाग 'स्पंजी' रूप ले लेता है जिससे फल खाने योग्य नहीं रह जाते हैं। अभी तक इस विकार के कारणों का ठीक से पता नहीं लग पाया है परंतु इस दिशा में प्रयास लगातार जारी हैं। आधुनिक प्रयोगों से पता चला है कि यह विकार मिट्टी द्वारा छोड़ी गई गर्मी एवं कैल्सियम पोषक तत्व की कमी के कारण होता है। इस प्रकोप से बचने हेतु फलों को तीन चौथाई परिपक्व अवस्था में ही तोड़ लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त बागों में पलवारना का प्रयोग करना चाहिए।

6. अन्य विकार

उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में झुमका विकार, फूलों में उचित परागण न होने के कारण पाया गया है। इस विकार में फल अत्यंत छोटे रह जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए किसानों को बौर (मंजरी) आने के समय किसी भी कीटनाशी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। हाल ही के कुछ वर्षों में आम के फलों में एक नई किस्म का विकार देखने में आया है। इस विकार में फलों पर छोटे-छोटे गर्त दिखाई पड़ते हैं। यह विकार बोरॉन की कमी से होता है। इसकी रोकथाम के लिए प्रति पेड 200-300 ग्राम बोरेक्स देना लाभदायक रहता है।

प्रमुख कीट एवं उनकी रोकथाम

आम में लगने वाले प्रमुख कीट व उनकी रोकथाम की विधियां नीचे दी गई हैं

1. आम का तेला

यह एक छोटा, मटमैले रंग का फुदकने वाला कीट है। मार्च-अप्रैल में इस कीट के वयस्क और बच्चे पत्तियों, फलों और मंजरियों से लगातार रस चूसते रहते हैं जिससे फल या तो कम लगते हैं या जो लगते हैं, वे छोटी अवस्था में ही गिर जाते हैं। रस चूसते समय कीट एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकालता है, बाद में इसी पदार्थ पर काली कवक लग जाती है। कभी-कभी इस कीट से काफी हानि होती है। कीट से फसल की रक्षा के लिए मंजरियों के निकलने से पूर्व या बाद में कीटनाशी दवाओं, जैसे-थायोडॉन एक मिली. प्रति लिटर जल में अथवा रोगोर 1 मिली. प्रति लिटर जल में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। दूसरा छिड़काव फल बन जाने के बाद करना चाहिए। फूल खिलने के समय छिड़काव नहीं करना चाहिए क्योंकि इस समय छिड़काव करने से लाभदायक कीट मर जाते हैं जिससे परागण की क्रिया प्रभावित होती है।

2. आम का चूर्णिल बग

इस कीट की मादा सफेद, चपटी और पंखहीन होती है परंतु नर कीट में पंख पाए जाते हैं। नर कीट फसल को कोई हानि नहीं पहुंचाते हैं। इस कीट की मादा, शिशु व प्रौढ़ असंख्य संख्या में पैदा होकर पेड़ पर चढ़ जाते हैं जो मंजरियों और फलों का रस चूसते हैं जिससे उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कीट की रोकथाम के लिए वृक्ष के तने के चारों ओर जमीन के करीब 60 सेमी. की ऊंचाई पर 20 सेमी. चौड़ी पॉलिथिन की पट्टी बांध देनी चाहिए। इस पट्टी के निचले सिरे पर 5 सेमी. की चौड़ाई में ग्रीज लगा देनी चाहिए जिससे कि पट्टी के नींचे खाली स्थान न रहे। यह कार्य फरवरी माह तक संपन्न कर लेना चाहिए।

यह कीट उत्तर भारत के तराई वाले क्षेत्रों में काफी हानि पहुंचाता है। प्रभावित पेड़ों की पत्तियों के स्थान पर गांठ बन जाती हैं तथा फसल मारी जाती है। ये कीट मार्च-अप्रैल के महीने में नई पत्तियों की मुख्य शिराओं पर अंडे देते हैं।

अंडों से अगस्त के द्वितीय सप्ताह में शिशु निकल आते हैं जो नई पत्तियों का रस चूसना शुरू कर देते हैं जिसके फलस्वरूप गांठें बन जाती हैं। कीट की रोकथाम के लिए दिसंबर-जनवरी के महीने में गांठें तोड़कर नष्ट कर देनी चाहिए। कीट का अधिक आक्रमण होने पर रोगोर अथवा नुवाक्रोन कीटनाशी रसायन को 2 मिली. प्रति लिटर पानी में मिलाकर अगस्त के प्रथम सप्ताह से 15 दिनं के अंतर पर उसके तीन छिड़काव करने चाहिए।

4. तना बेधक

इस कीट की सूंडी बड़े आकार, मटमैले रंग की तथा लंबी सूंडयुक्त होती है। मादा वयस्क कीट जुलाई में पेड़ के तने के ऊपर गड्ढों में अथवा जमीन के समीप छाल के ऊपर अंडे देती है। लगभग 11 दिन में अंडे से सूंडी निकलकर तने में छिद्र बनाकर अंदर घुस जाती है। सूंडी वृक्ष को अंदर से खाना शुरू कर देती है। प्रभावित वृक्षों में छिद्र जमीन के पास पाए जाते हैं। पेड़ थोड़े दिनों बाद पीले पड़ने शुरू हो जाते हैं और बाद में सूख जाते हैं। छिद्रों से बुरादा व मल निकलता है जो कि छिद्र के पास देखा जा सकता है। इस कीट की

रोकथाम के लिए उन छिद्रों में एक नुकीला तार डालकर घुमा देना चाहिए। ऐसा करने से सूंडी मर जाती है। सल्फर की गोलियों को छिद्रों में रखकर उन्हें बाहर से गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। यह अत्यंत प्रभावकारी उपाय है।

5. फलवेधक मक्खी

आम के फल को वेधक मक्खी सबसे अधिक क्षति पहुंचाती है। इसके प्रकोप के कारण भारत से आम के निर्यात में काफी कमी हुई है। हमारे देश के दक्षिणी हिस्सों में यह पूरे वर्ष क्रियाशील रहती है, परंतु उत्तरी भारत में यह शीतकाल में प्यूपे की अवस्था में रहती है। गर्मियों में जब आम की फसल तैयार होती है तो इसकी संख्या में भी वृद्धि होती है।

मादा मक्खी फल के अंदर 3-4 मिमी. की गहराई में अंडे देती है। बाद में सूंडिया निकलकर गूदे को खाना शुरू कर देती हैं। फलस्वरूप फल सड़ने शुरू हो जाते हैं और गिरने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए प्रभावित फलों को नष्ट कर देना चाहिए। प्रौढ़ मक्खियों की रोकथाम के लिए कार्बेरिल का छिड़काव करें व मैलाथियॉन (00.5 प्रतिशत) + युग्नाल (0.1 प्रतिशत) + गुड़ की लेई बनाकर बाग के भीतर 4-5 स्थानों पर खुले बर्तनों में रखे। प्रौढ़ कीट इस लेई को खाकर मर जाएंगे।

6. गुठली का घुन

यह पीडक ऊष्ण इलाकों में आम का बहुत ही नुकसानकारक कीट है। यह कीट केवल आम को ही क्षति पहुंचाता है। आम की मीठी किस्में, जैसे-अल्फांसो, बंगलौरा, नीलम आदि को इस कीट द्वारा अधिक नुकसान पहुंचाया जाता है।

इसके अंडे अर्ध विकसित फलों की बाहरी त्वचा में अथवा पकने वाले फलों पर दिए जाते हैं। विकसित सूंडियां फल के गूदे में प्रवेश कर बीज के अंदर घुस जाती हैं। इस कीट के कारण हमारे देश से अल्फांसो आम का निर्यात लगभग बंद है। इसे निम्नलिखित उपायों से नियंत्रित कर सकते हैं:

(1) प्रभावित फलों को नष्ट करें।

(2) भूमि की खुदाई करके वयस्कों को बाहर निकालना भी नियंत्रण में सहायक होता है।

(3) फैंथियॉन (0.01 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

(4) कड़े फलों को एथिलीन डाइब्रोमाइड घोल में 50^0 सेल्सियस पर दो घंटे डुबोने से इस कीट को नष्ट किया जा सकता है। इस क्रिया द्वारा अल्फांसो तथा दशहरी फलों के स्वाद, खुशबू आदि में अंतर नहीं पड़ता, परंतु आम की लगड़ा किस्म इस क्रिया से प्रभावित होती है।

(5) वाष्पीय उष्ण उपचार करवाएं।

7 छाल-भक्षी इल्ली

छाल-भक्षी इल्ली से आम को काफी क्षति पहुंचती है। कीट पीले भूरे रंग के पतंगे होते हैं तथा इसकी इल्लियां भद्दे भूरे रंग की होती हैं। इल्लियां तना एवं शाखाओं की छाल में घुसकर अंदर ही अंदर खाती रहती है। प्रभावित पौधे की खाद्य-वाहक नलिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती हैं तथा पौधा कमजोर हो जाता है। इस कीट को निम्नलिखित उपायों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है :

1. प्रभावित भाग को काट कर अलग कर दें। इसके बाद नुकीली लोहे की तार को छेद में डालकर इल्लियों को कुचलकर नष्ट कर दें।

2. कीट द्वारा बनाए गए सूराख में केरोसीन तेल में रूई भिगोकर रखें तथा छिद्र को गीली मिट्टी से बंद कर दें।

3. कीट द्वारा सूराख में डाइक्लोरोफॉम (0.01 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफॉस (0.5 प्रतिशत) रखकर उसे चिकनी मिट्टी से बंद कर दें।

8. दीमक

दीमक पुराने और नए वृक्षों, दोनों को ही नुकसान पहुंचाती है। नए पौधों पर प्राय: इसका प्रभाव जड़ और तनों पर होता है। यह छाल व लकड़ी को खुरचकर खाती है। प्रभावित पौधा एकाएक मर जाता है। पुराने वृक्षों पर इसका प्रभाव तब होता है जब बाग की समुचित देखभाल, निराई-गुड़ाई आदि सही ढंग से नहीं की जा रही हो। दीमक के नियंत्रण हेतु निम्नलिखित उपाय अपनाएं जा सकते हैं :

(1) क्लोरोपाइरीफॉस (2 मिली/ली. पानी) के घोल को पौधों या वृक्षों में सिंचाई के साथ दें।

(2) तनों पर आक्रमण की अवस्था में तने को साफ करके उपयुक्त घोल का छिड़काव करें।

प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम

आम के पेड़ों व फलों को रोगों से बचाना अत्यंत आवश्यक है। आम में लगने वाले प्रमुख रोग व उनकी रोकथाम की विधियों का वर्णन निम्नलिखित है :

1. चूर्णिल आसिता

यह रोग ऊष्ण, नम वातावरण और ठंडी रातों के अनुकूल वातावरण में गंभीर रूप धारण कर लेता है। मंजरियों और नई पत्तियों पर सफेद या धूसर चूर्णिल वृद्धि दिखाई पड़ती है। रोग का संक्रमण मंजरियों की शिखा से प्रारंभ होकर नीचे की ओर पुष्प अक्ष तथा नई पत्तियों पर हो जाता है। यदि संक्रमण के पूर्व फल लग गए हों तो वे अपरिपक्व अवस्था में ही गिर जाते हैं। यह बहुत ही विनाशकारी रोग है जो कभी-कभी पूरी फसल को नष्ट कर देता है। इस रोग की रोकथाम के लिए कवकनाशी दवा के तीन छिड़काव बौर निकलने के समय 15-20 दिनों के अंतराल पर करने चाहिए, जो निम्नलिखित हैं :

(1) पहला छिड़काव विलेय सल्फर (0.2 प्रतिशत) का घोल बनाकर उस समय करना चाहिए जब बौर 3-4 इंच का होता है।

(2) दूसरा छिड़काव, कैराथेन (0.1 प्रतिशत) का करें जो पहले छिड़काव के 15-20 दिनों के बाद हो।

(3) दूसरे छिड़काव के 15-20 दिनों के बाद, तीसरा छिड़काव केलक्सिन (0.1 प्रतिशत) का करें।

2. श्यामवर्णता

इस रोग के लक्षण पत्तियों, मंजरियों, कोमल टहनियों और फूलों पर देखे जा सकते हैं। पत्तियों पर भूरे या काले, गोल या अनियमितआकार के धब्बे पाए जाते हैं। पत्तियों की वृद्धि रुक जाती है और वे सिकुड़ जाती हैं। कभी-कभी रोगजनक ऊतक सूखकर गिर जाते हैं, जिससे पत्तियों में छिद्र दिखाई पड़ते हैं। यह रोग नमी होने पर अधिक फैलता है। संक्रमण अधिक होने पर रोगी पत्तियां गिर जाती हैं। मंजरियों व फूलों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे पड़ते हैं और वे धीरे-धीरे गिर जाते हैं। यह रोग मंजरी अंगमारी तथा फल-सड़न के रूप में भी प्रकट होता है। इस रोग की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय प्रभावी पाए गए हैं :

(1) सभी रोगग्रसित टहनियों की छंटाई करें और बाग में गिरी हुई पत्तियों और फलों को हटाकर जला दें।

(2) मंजरी संक्रमण को रोकने के लिए कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। पर्णीय संक्रमण को रोकने के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव लाभकारी रहता है।

(3) बाग में फलों की तुड़ाई से पहले कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करने से तुड़ाई-उपरांत रोग को कम किया जा सकता है।

3. उल्टा सूखा रोग

यह रोग पुराने बागों में अधिक लगता है तथा पूरे वर्ष में कभी भी देखा जा सकता है, परंतु सबसे स्पष्ट रूप में इसे अक्टूबर और नवंबर माह में देखा जा सकता है। इसका मुख्य लक्षण है टहनियों का ऊपर से नीचे की ओर सूखना। पत्तियां धीरे-धीरे सूख जाती हैं जो कि आग से झुलसी हुई मालूम पड़ती हैं। प्रारंभ में नई, हरी टहनियों पर गहरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। जब ये धब्बे बढ़ते है तो नई टहनियां सूख जाती हैं। ऊपर की पत्तियां अपना हरा रंग खो देती हैं और धीरे-धीरे सूख जाती हैं। ऐसी टहनियों को यदि दो भागों में लंबाई से काटें तो अंदर के ऊतकों में भूरापन दिखता है। शाखाएं फटने लगती हैं, उनसे पीला गोंद निकलता है और फिर वे सूख जाती हैं। इस रोग की रोकथाम हेतु निम्नलिखित उपाय लाभकारी रहते हैं :

(1) काट-छांट के बाद गाय का॰ गोबर च चिकनी मिट्टी मिलाकर कटे भाग पर लगाएं।

(2) काट-छांट के बाद बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या कॉपर ऑसीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

4. गोंदार्ति

इस रोग का प्रकोप सामान्यत: रेतीली मिट्टी में उगाए जाने वाले आम के पौधों में अधिक होता है, किंतु यह सभी तरह की मिट्टी में भी हो सकता है। यह रोग तने और शाखाओं पर प्राय: वर्षा ऋतु के बाद, सर्दी में देखा जा सकता है। इस रोग का मुख्य लक्षण यह है कि पेड़ों के मुख्य तने, शाखाओं और छाल से गोंद का रिसाव होता है। जहां-जहां सतह पर दरार होती है, वहां गोंद की संभावना ज्यादा रहती है। इसका प्रकोप बढ़ने पर गोंद के रिसने से छाल का रंग गहरे भूरे रंग में बदल जाता है और लंबाई में दरारें पड़ जाती हैं। बाद में छाल पूरी तरह सड़ जाती है और धीरे-धीरे पेड़ सूख जाता है। आम में गोंदार्ति को निम्नलिखित उपायों द्वारा कम किया जा सकता है:

1. रोगग्रसित छाल या हिस्से को हटा कर सफाई के बाद बोर्डो लेप या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाएं।

2. कॉपर सल्फेट का 500 ग्राम प्रति वृक्ष की दर से व पेड़ की उम्र के हिसाब से, जड़ के चारों तरफ डालना उपयोगी रहता है।

❑

शब्दावली संबंधी संदर्भ-साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन

बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रहों, विषयवार शब्दावलियों और मूलभूत शब्दावलियों के रूप में आयोग अब तक लगभग 70 कोशों का निर्माण कर चुका है। यह सामग्री अंग्रेजी भाषा से हिंदी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद संबंधी दिन-प्रतिदिन के कार्यों के लिए बहुत उपयोगी है। आयोग ने विभिन्न शैक्षिक विषयों से संबंधित लगभग 60 परिभाषा-कोश भी तैयार किए हैं जो आयोग द्वारा विकसित मानक पारिभाषिक शब्दावली के यथार्थ प्रयोग का उदाहरण हैं।

'विज्ञान गरिमा सिंधु' तथा 'ज्ञान गरिमा सिंधु' नामक उच्च-स्तरीय हिंदी त्रैमासिक पत्रिकाओं के प्रकाशन से आयोन ने लेखन में शब्दावली के प्रयोग को बढ़ावा दिया है। उपयुक्त पत्रिकाओं के अब तक क्रमश: 69 और 7 अंक प्रकाशित हुए हैं।

4

टिकाऊ खेती में दलहनी फसलों का योगदान

डॉ. दीना नाथ शुक्ला एवं डॉ. इंदु भूषण पांडेय

खाद्यान्न फसलों में अनाज के बाद दलहनी फसलों का दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व में दो दर्जन से अधिक दलहनी फसलें उगाई जाती हैं। विश्व के 73. 2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में दलहनी की खेती की जाती है जिससे कुल 61.72 मिलियन टन उपज प्राप्त होती है तथा इनकी उत्पादकता 843 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है। विश्व स्तर पर दलहनों के उत्पादन में अभूतपूर्व बढ़ोतरी दर्ज की गई है। वर्ष 1980-82 में इनका कुल उत्पादन 43.32 मिलियन टन था जो वर्ष 2003-05 में बढ़कर 61.72 मिलियन टन पहुंच गया है। विश्व स्तर पर दलहनों के कुल उत्पादन का 74 प्रतिशत भाग विकासशील देशों से प्राप्त होता है तथा शेष 26 प्रतिशत विकसित देशों से प्राप्त होता है। भारत विश्व का एक प्रमुख दलहन उत्पादक राष्ट्र है, जो अकेला विश्व के कुल दलहन क्षेत्र के 33 प्रतिशत भाग में दलहन खेती करता है और विश्व के कुल दलहन उत्पादन में 25 प्रतिशत का योगदान करता है। कुछ दलहनी फसलों जैसे चना एवं अरहर में इसका अंशदान क्रमश: 62 तथा 72 प्रतिशत है। विकासशील देशों में अरहर उत्पादन का कुल 70 प्रतिशत भाग खाने तथा 25 प्रतिशत भाग पशु-आहार तथा शेष भाग बीज एवं अन्य कार्यों में लगाया जाता है। प्रमुख दलहन उत्पादक राष्ट्र के साथ-साथ भारत विश्व का सबसे बड़ा दलहन उपभोक्ता भी है। भारत, वर्ष 1991-95 में कुल 0.5 मिलियन टन दलहन का आयात करता था जो वर्ष 2001-05 में बढ़कर 1.98 मिलियन टन पहुंच गया। वर्तमान में यह विश्व का सर्वाधिक दलहन आयात करने वाला देश बन गया है, जो विश्व में कुल दलहन आयात का 17 प्रतिशत है।

विभिन्न प्रकार की जलवायु में एक दर्जन से अधिक प्रकार की दलहनों का भारत में उत्पादन किया जाता है जिसमें प्रमुख रूप से चना, अरहर, उर्द मूंग, मसूर, सोयाबीन, मटर आदि दलहनी फसले हैं। भारत में दलहन की खेती से लगभग 22-23 मिलियन हेक्टेयर भूमि में लगभग 14 मिलियन टन दलहन का उत्पादन होता है। इस प्रकार क्षेत्रफल एवं उत्पादन के दृष्टिकोण से दलहन में भारत का प्रथम स्थान है। आजादी के समय दलहन की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 70 ग्राम के आस-पास थी जो वर्ष 2007 में घटकर 37 ग्राम ही रह गई है। दलहन की उपलब्धता में वर्ष-दर-वर्ष हो रही कमी भारत-जैसे शाकाहारी देश के लिए चिंता का विषय है, क्योंकि यहां की अधिकतर जनसंख्या के सुपोषण की निर्भरता काफी हद तक दलहनी फसलों पर है। दलहनों से हमें उच्च गुणवत्ता वाली प्रोटीन प्राप्त होती है। दलहनों से प्राप्त प्राटीन प्राणी प्रोटीन की अपेक्षा सस्ती एवं अच्छी होती है। सामान्यत: दलहनी फसलों में 20 से 25 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है, जो खाद्यान्न फसलों की अपेक्षा ढाई से तीन गुना अधिक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रति व्यक्ति को प्रतिदिन 80 ग्राम दालों का सेवन करना चाहिए।

देश की बढ़ती जनसंख्या को दलहनों की समुचित उपलब्धता बनाए रखने के लिए बड़ी मात्रा में दलहनों के उत्पादन की आवश्यकता है। वर्ष 2010 तक देश

की जनसंख्या लगभग 1156 मिलियन, वर्ष 2020 तक 1279 मिलियन, एवं 2030 तक 1374 मिलियन तक पहुंच जाएगी। वर्तमान में दलहनों की बढ़ती मांग को देखते हुए दलहनों के उत्पादन को 3.3 प्रतिशत की दर से प्रति वर्ष बढ़ाना होगा। इस प्रकार वर्ष 2010 तक 19 मिलियन टन, वर्ष 2020 तक 23 मिलियन टन एवं 2030 तक 24-26 मिलियन टन दलहन की आवश्यकता होगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वर्तमान दलहन उत्पादकता 6 क्विंटल प्रति हेक्टेयर को 9.9 क्विंटल प्रति हेक्टयर तक बढ़ाना होगा। उत्पादन के दृष्टिकोण से हमारे देश का विश्व में प्रथम स्थान है, परंतु औसत उपज लगभग 6-6.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इस प्रकार उत्पादकता की दृष्टि से हमारे देश का विश्व में 118 वां स्थान है। भारत में कुल दलहन उत्पादन का मध्य प्रदेश में 23 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 18 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 14 प्रतिशत, राजस्थान में 11 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश में 9 प्रतिशत एवं कर्नाटक में 6 प्रतिशत है। देश की दलहनी फसलों में चने का सर्वाधिक उत्पादन होता है जो दलहनी फसलों के कुल उत्पादन में अकेले 40 प्रतिशत का योगदान करता है। इसके बाद अरहर 18 प्रतिशत, उर्द 11 प्रतिशत, मूंग 9 प्रतिशत, मसूर 8 प्रतिशत तथा मटर 5 प्रतिशत का योगदान करता है।

दलहनी फसलों में मूसला जड़ें पाई जाती हैं। ये मूसला जड़ें मिट्टी में गहराई तक जाती हैं। इसके जड़ों की गांठों में विशेष प्रकार के राइजोबियम नामक जीवाणु पाए जाते हैं। ये जीवाणु नाइट्रोजिनेज एंजाइम की सहायता से वायुमंडल में स्थित नाइट्रोजन को अवशोषित कर जड़ों की ग्रंथिकाओं (नॉडयूल) द्वारा मिट्टी में संस्थापित करते हैं। इस प्रकर दलहनी फसलें प्रति हेक्टेयर 30-40 किलोग्राम नाइट्रोजन मिट्टी में संस्थापित करती हैं। इसके अतिरिक्त दलहनी फसलों से भारी मात्रा में फूलों एवं पत्तियों के झड़ने से मृदा में जैव पदार्थों (जीवांश) की बढ़ोतरी होती है। इसके अतिरिक्त दलहनी फसलों में मूसला जड़ होने के कारण ये मिट्टी

सारणी 1 विभिन्न दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण से जमीन में नाइट्रोजन का योगदान

फसल	नाइट्रोजन यौगिकीकरण (किलोग्राम/हेक्टेयर/वर्ष)	अगली फसल के लिए अवशिष्ट नाइट्रोजन की मात्रा (किलोग्राम/हेक्टेयर)
1. अल्फ अल्फा	100-200	-
2. बरसीम	100-150	83
3. चना	26-63	60-70
4. लोबिया	53-85	60
5. मूग	50-55	30
6. मूंगफली	112-152	30
7. ग्वार	37-196	-
8. मसूर	35-100	18-30
9. मटर	46	20-32
10. अरहर	68-700	20-49
11. सोयाबीन	49-130	-

से काफी गहराई से पोषक तत्व एवं जल का अवशोषण करती हैं, जिससे भौम जल स्तर भी ऊपर उठता है। इस प्रकार दलहनी फसलें मनुष्य तथा जानवरों के प्रोटीन की मुख्य स्रोत होने के साथ-साथ जमीन की उर्वरता बढ़ाती हैं तथा भूमि क्षरण को भी रोकती हैं। दलहन के इस गुण के कारण इसकी खेती क्षरण होने वाली जमीन तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सामान्य रूप से की जाती है। वैश्विक स्तर पर दलहनी फसलें नाइट्रोजन चक्र में अहम भूमिका अदा करती हैं तथा कुल नाइट्रोजन यौगिकीकरण का 25 प्रतिशत योगदान करती हैं। दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण की मात्रा पौधों की जड़ों में उपस्थित जीवाणु की संख्या, दलहनी फसलों के प्रकार तथा वायुमंडलीय कारकों से प्रभावित होती हैं। प्रमुख दलहनी फसलों द्वारा प्रति वर्ष अनुमानित वायुमंडलीय नाइट्रोजन यौगिकीकरण तथा अपने उपयोग के बाद अगली फसल को प्रदान की गई नाइट्रोजन की मात्रा सारणी -1 में दी गई है।

वर्तमान समय में हमारे देश में मुख्य रूप से रासायनिक उर्वरकों पर आधारित खेती की जाती है, जो हर तरह से भविष्य के लिए खतरे का द्योतक है। ऐसे में दलहनी फसलें टिकाऊ खेती में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है क्योंकि दलहनी फसलें मृदा की न सिर्फ उर्वरा शक्ति बढ़ाती हैं, बल्कि ये मृदा की भौतिक, जैविक एवं रासायनिक गुणवत्ता को भी सुधारती हैं। इसलिए भूमि से लगातार अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खेतों में दलहनी फसलों को हेरफेर कर उगाते रहना चाहिए। दालें भारतीय भोजन का अहम हिस्सा हैं। भोजन में वगैर दालों के प्रयोग के भूख से तो मुक्ति मिल सकती है, परंतु कुपोषण से मुक्ति नहीं मिल सकती है। प्रोटीन, खनिज, विटामिन की प्रचुरता के कारण इसको स्वास्थ्यप्रद खाद्य पदार्थ के रूप में जाना जाता है। दालों की उपलब्धता बनाए रखने का एकमात्र विकल्प अधिक से अधिक दलहनों का उत्पादन करना है। वर्तमान में हमारे देश के दलहन उत्पादन, उत्पादकता एवं क्षेत्रफल में ठहराव की स्थिति आ गई है, क्योंकि पिछले एक दशक से दलहन का उत्पादन 13-15 मिलियन टन, उत्पादकता 6.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एवं क्षेत्रफल 22 मिलियन हेक्टेयर के आसपास बना हुआ है। इस ठहराव के बावजूद हमारे देश में दलहन उत्पादन की काफी संभावनाएं हैं। हमारे देश में अधिकतर दलहन की खेती पारंपरिक ढंग से, उबड़-खाबड़, एवं अनुर्वर भूमि में की जाती है तथा देश का लगभग 95 प्रतिशत दलहन का क्षेत्र असिंचित है। फसल उत्पादन की विभिन्न तकनीकों जैसे अरहर की मेड़ पर बुआई, उन्नतशील एवं संकर किस्में का प्रयोग, असिंचित क्षेत्र में फली लगने के समय 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव, बुआई के समय 20-25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर गंधक का उपयोग, राइजोबियम संवर्ध से फसल बीज को उपचारित करना, खरपतवार नियंत्रण के लिए फसल जमाव के पहले पेन्डीमिथिलीन नामक खरपतवार-नाशी रसायन का उपयोग, समय पर कीट एवं बीमारियों का नियंत्रण करके दलहन उत्पादन में 15-20 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है।

सारणी 2: राइज़ोबियम संवर्ध के उपयोग से दलहनी फसलों की वृद्धि

फसल	राइजोबियम संवर्ध के उपयोग से उपज में वृद्धि (प्रतिशत)
अरहर	15-20
चना	12-14
लोबिया	26-30
मूंगफली	10-16
मसूर	20-30
मूंग	11-65
सोयाबीन	20-70
उरद	13-54

सिंचित क्षेत्रों में कम अवधि की दलहनी फसलें सघन खेती की मुख्य अवयव है। दलहनी फसलें वायुमंडल

तथा भूमि पर लाभकारी प्रभाव डालती हैं। ये न तो जमीन से पोषक तत्वों व पानी का ह्रास करती हैं और न ही पौध-घर (ग्रीन हाउस) गैसों को उत्सर्जित करती हैं, बल्कि ये मृदा तथा जल को संरक्षित करती है और भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता को सुधारती हैं। इसलिए फसलों की सघन खेती में दलहनी फसलों का समावेश करना भूमि के पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी में संतुलन तथा उत्पादन एवं उत्पादकता में टिकाऊपन के लिए एक सुदृढ़ एवं समुचित विकल्प होगा।

❑

प्रशिक्षण/अभिविन्यास कार्यक्रम

आयोग द्वारा विश्वविद्यालय के अध्यापकों, छात्रों, वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के कर्मियों को शब्दावली के प्रयोग की उपयोगिता संबंधी प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से तकनीकी शब्दावली कार्यशालाओं के कार्यक्रम देश के कोने-कोने में आयोजित किए जाते हैं। अब तक आयोग ने 250 कार्यशालाओं का सफल आयोजन किया है। यह योजना लगभग 2 दशक पूर्व प्रारंभ की गई थी। इसके अतिरिक्त आयोग ने अब तक लगभग 200 प्रदर्शनियों का भी आयोजन किया है जिसमें आयोग के संदर्भ-साहित्य का प्रदर्शन और बिक्री की जाती है। ये प्रदर्शनियां विश्व पुस्तक मेलों, राज्य स्तरीय पुस्तक मेलों, विभिन्न विश्वविद्यालयों, शिक्षा संस्थानों आदि में आयोजित की जाती है।

5

सब्जी की पौध का उत्पादन: एक व्यवसाय

प्रवीण कुमार सिंह एवं प्रेमचंद चौधरी

आज के उन्नत सब्जी-उत्पादन व्यवसाय में सब्जी की पौध का उत्पादन अत्यंत महत्वपूर्ण है। फल एवं फलों की पौध के उत्पादन की तरह ही सब्जी की पौध का उत्पादन भी एक व्यवसाय का रूप लेता जा रहा है। इस व्यवसाय में बागवानी विज्ञान के प्रशिक्षित नवयुवक काफी प्रगति कर रहे हैं। राजस्थान के अतिरिक्त दूसरे राज्यों, जैसे-गुजरात, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक आदि राज्यों के प्रमुख सब्जी-उत्पादन क्षेत्रों में ऐसी कई पौध-उत्पादक नर्सरियां निरंतर बढ़ती जा रही हैं जो किसानों की पसंद की सब्जी की किस्मों की पौध तैयार कर उन्हें दे रही हैं। इससे पौध-उत्पादक एवं सब्जी उत्पादक दोनों ही लाभान्वित हो रहे हैं।

सब्जी की पौधशाला के लिए आवश्यक सामान व उपकरण

फावड़ा, खुरपी, पानी का फव्वारा, निराई-हो, रस्सी, खूंटिया, टोकरी, सिरकी, पालिथीन की चादरें, स्प्रेयर, डस्टर, दवाएं, गोबर की खाद, आदि।

पौधशाला के लिए उपयुक्त स्थान तथा पौधशाला की वनावट

पौधशाला बनाने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(1) पौधशाला के लिए भूमि अपेक्षाकृत ऊंचे स्थान पर होनी चाहिए।

(2) पौधशाला की मिट्टी बलुई दोमट होनी चाहिए, जिसका pH मान 6.5 के लगभग हो।

(3) पौधशाला पानी के स्रोत के पास हो।

(4) पौधशाला, खेत में ऐसे स्थान पर हो जहां उसकी देखभाल ठीक से की जा सके।

(5) पौधशाला के पास छायादार वृक्ष न हों।

(6) पौधशाला खेत के उस स्थान पर हो जो खेत में कार्य करते समय बाधा न डाले।

पौधशाला की क्यारियों को तैयार करने से पहले मिट्टी को लगातार हल अथवा फावड़े से जुताई अथवा खुदाई करके भुरभुरा कर लेना चाहिए। मिट्टी से पुरानी जड़ों के टुकड़े, घास-पात आदि को उखाड़ कर बाहर फेंक देना चाहिए। 40-50 किग्रा. प्रति 10 वर्ग मीटर भूमि में मिट्टी को समतल कर देना चाहिए।

आर्द्र-पतन पौधशाला की एक भयंकर बीमारी है जो मिट्टी में उत्पन्न कवक से होती है। इस बीमारी के कारण पौध जमीन की सतह के पास सूख जाती है और पौधे सूख जाते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए पौधशाला की मिट्टी का निर्जर्मीकरण करते हैं और बीज का उपचार भी कवकनाशी दवाओं, जैसे थीरम, वाविस्टीन, सेरेसान या कैपटान आदि से करें। इसके अतिरिक्त प्रति एक लिटर पानी में 25 मि.लि. फॉर्मेल्डिहाइड घोलकर मिट्टी में लगा दें तथा इसके

बाद उपचारित मिट्टी को एक सप्ताह तक पॉलिथीन की चादर से ढक कर रखें। यह उपचार पौधशाला के आर्द्र-पतन रोग को रोकने के लिए बहुत ही लाभकारी है। यह उपचार बीज बोने से लगभग 15 दिन पहले करना चाहिए। दीमक तथा कटुवा सूंडी (कटवर्म) भी छोटे पौधों की जड़ों को काटकर बहुत हानि पहुंचाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए फ्यूराजन 10 जी. क्यारियां बनाते समय मिट्टी में मिला दें। जैविक रूप से आर्द्र-पतन रोग के नियंत्रण हेतु 15 किग्रा. गोबर की खाद में 450 ग्राम ट्रायकोडर्मा विरडी नामक मित्र फफूंद मिलाकर एक सप्ताह तक छायादार स्थान पर रखें। इस समय गोबर की खाद में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। एक सप्ताह बाद इस खाद का प्रयोग पौधशाला में कर सकते हैं। इस समय इस फफूंद का जाल पूरी गोबर की खाद में फैल चुका होगा जो दूसरी नुकसान-दायक फफूंदों को पनपने नहीं देता। 4-6 ग्राम मित्र फफूंद से प्रति कि.ग्रा. बीज का उपचार भी किया जा सकता है।

क्यारियों को उपयोग में लाने से पहले मिट्टी को एक सार कर हल्का-हल्का दबा दें। पौधशाला की क्यारियां भूमि की सतह से 15-20 सेमी. ऊंची बनाना लाभकारी होता है। इसकी ऊंचाई, मिट्टी की स्थिति, वर्षा तथा पानी के निकास पर भी निर्भर करती है। क्यारी की लंबाई आवश्यकता के अनुसार ही रखें लेकिन इसकी चौड़ाई 50 सेमी. से ज्यादा न रखें ताकि निराई-गुड़ाई करने में आसानी रहे। जल-निकास के लिए नर्सरी की क्यारियों के चारों तरफ 30 सेमी. चौड़ी तथा 8-10 सेमी. गहरी नालियां बनाएं और इनको मुख्य जल निकास की नाली के साथ मिला दें। इन नालियों को गर्मी के मौसम में कभी-कभी पूरी तरह पानी से भर देना चाहिए जिससे छोटी पौध को पर्याप्त नमी व ठंडक मिलती रहे। प्रत्येक दो क्यारियों के बीच की गहरी नाली क्यारियों में पानी देने, निराई करने, तथा पौध को निकालने में सहायक होती हैं।

बीज की बुआई एवं पौधशाला का रख-रखाव

नर्सरी की तैयार क्यारियों में बीज की बुआई पंक्तियों में उस समय करें जब क्यारियों की मिट्टी में नमी उचित मात्रा में हो। नर्सरी की क्यारी में बीज की बुआई के लिए एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति के बीच की दूरी 5 सेमी. तथा बुआई की गहराई 1 सेमी रखनी चाहिए। बीज बोने के बाद क्यारियों को सूखी घास अथवा पुआल से ढककर रखें जिससे मिट्टी में नमी बनी रहे। बीजों का जमाव शुरू होते ही इस घास को हटा देना चाहिए। क्यारियों में पौधों की सिंचाई की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। शुरू की अवस्था में क्यारियों में फब्वारे की सहायता से आवश्यकतानुसार पानी दिया जाना चाहिए। जाड़े व बसंत के मौसम में पौध तैयार करने में ज्यादा परेशानी नहीं होती, लेकिन गर्मी व बर्षा के मौसम में पौध तैयार करने मे कुछ कठिनाई होती है। इन मौसमों में नर्सरी की क्यारियों की चौड़ाई कम करके 30-40 से.मी. कर दें, जबकि लंबाई आवश्यकता के अनुसार रख संकते हैं। नर्सरी की क्यारियों के बीच की नाली में बुआई से पहले पानी भर दें, जिससे ऊपर उठी हुई क्यारियों में नमी बनी रहे। गर्मी के मौसम में नर्सरी की क्यारियों में सिंचाई दोनों समय नियमित रूप से करनी चाहिए। अंकुरित पौध को गर्मी में तेज धूप तथा जाड़े में अधिक ठंड व बरसात में तेज बर्षा से बचाने के लिए इन्हें सिरकी या पॉलिथीन की चादर से ढक कर रखें। लेकिन ऐसा तभी करें जब आवश्यक हो, जैसे गर्मी के मौसम में सिरकी का प्रयोग केवल तेज धूप के समय, अर्थात् दोपहर 12 से 3 बजे के बीच ही ढकें, जाड़े के मौसम में सिरकी को रात के समय तथा बरसात के मौसम में केवल तेज वर्षा के समय ही करें।

पौधशाला में छोटे पौधों को एफिड (माहू या चेपा) जैसे कुछ हानिकारक कीड़े पौधों का रस चूसकर हानि पहुँचाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए मैलाथियॉन या एन्डोसल्फान नामक 2 मिली दवा प्रति लिटर पानी में घोलकर बनाकर छिड़काव करें। यदि पौधों की बढ़वार कम हो तब प्रति लिटर पानी में 5 ग्राम यूरिया के घोल का छिड़काव करना लाभदायक रहता है। यूरिया के घोल की सांद्रता 0.5% से अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा पौधों के झुलसने का डर रहता है। समय-समय पर खरपतवारों को पौधशाला से उखाड़ कर फेंकते रहना चाहिए। मुख्य खेत में रोपण से पहले क्यारी की मिट्टी में हल्की सी दृढता का होना आवश्यक है। इसके लिए पौध की रोपाई से 2-3 दिन पहले क्यारियों में सिंचाई रोक देनी चाहिए और पॉलिथीन से ढके बिना रखना चाहिए। पौधशाला में तैयार पौद को ज्यादा दिनों तक रोक कर नहीं रखना चाहिए अन्यथा अधिक बढ़वार के कारण रोपण करने पर उपज कम हो जाती है।

पौध-रोपण का कार्य हमेशा शाम के समय करना चाहिए तथा रोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना अच्छा रहता है। सब्जियों की सफल खेती के लिए स्वस्थ, रोगरहित पौद बनाना बहुत आवश्यक है।

छोटे किसान एवं बेरोजगार युवक पौधशाला के उचित रख-रखाव से विभिन्न सब्जियों की उन्नत किस्मों की स्वस्थ पौध लगा कर सब्जियों की पैदावार में वद्धि कर सकते हैं और स्वतंत्र व्यवसाय अपना कर अपनी आय में वद्धि कर सकते हैं।

❑

शब्दावली का कंप्यूटरीकरण

आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावली को प्रयोक्ताओं के लिए अधिक उपयोगी बनाने के उद्देश्य से आयोग अब तक लगभग 4 लाख तकनीकी शब्दों का कंप्यूटरीकरण कर रहा है जो सी.डी. के रूप में उपलब्ध होगी। शेष शब्दावली के कंप्यूटरीकरण का कार्य जारी है।

इस समय बनाई जा रही सभी शब्दावलियाँ आयोग द्वारा कंप्यूटरीकृत डाटाबेस में प्रविष्ट की जा रही हैं ताकि उनमें आवश्यकतानुसार शब्द संसाधन, प्रतिप्राप्ति, संशोधन, परिवर्धन, निरस्तीकरण तथा अद्यतनीकरण किया जा सके। आयोग द्वारा निर्मित संदर्भ-सामग्री को फ्लॉपी पर भी उपलब्ध कराने की योजना है।

6

कृषि के नए आयामः प्रगति-सार

डॉ. आर.एस. सेंगर

नीम के तेल से गर्भ-निरोधक विकसित

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन के डिफेन्स इंस्टीट्यूट आफ फिजियोलॉजी ऐंड एलाइड साइन्सेज ने नीम से एक विशेष प्रकार का गर्भ-निरोधक तैयार किया है तथा इसकी तकनीक को जल्द ही फार्मेस्युटिकल उद्योग को अंतरित किए जाने की उम्मीद है। डी.आर. डी.ओ मुख्यालय के अनुसंधान एवं विकास विभाग के मुख्य नियंत्रक डॉ. डब्ल्यू सेल्वमूर्ति ने बताया है कि यह विशेष प्रकार का गर्भ निरोधक नीम के तेल से तैयार किया गया है जो शुक्राणु को समाप्त कर गर्भ निरोधक का काम करता है, साथ ही योनि-क्षेत्र के संक्रमणों का भी उपचार करता है। यह पूरी तरह से सुरक्षित होने के साथ ही अन्य दवाओं की तुलना में काफी सस्ता भी है क्योंकि नीम भारत में बहुतायत से पाया जाता है। सेल्वमूर्ति ने बताया कि यह दवा इस समय अपने परीक्षण के दूसरे चरण में है। साथ ही उन्होंने बताया कि टीटीके फार्मा, रैनबैक्सी तथा कई अन्य कंपनियों ने इस दवा में रुचि दिखाई है तथा इसकी तकनीक इन्हीं में से किसी कंपनी को अंतरित की जाएगी। उन्होंने बताया कि डी.आर.डी.ओ. ने डेंग्यू के नियंत्रण के लिए भी दवा विकसित की है जिसकी तकनीक में कुछ अमेरिकी कंपनियां रुचि ले रही हैं।

धान की उपज बढ़ाने वाले जीन की खोज :

चीन के कृषि वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जीन की खोज की है जो धान की उपज बढ़ाने में सहायक है। अभी हाल ही में यहां के वैज्ञानिकों ने धान में पाए जाने वाले जीन मोनोक्यूलम की खोज की है जो पौधे की शाखाओं और कलियों को नियंत्रित करता है। अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिकों के अनुसार प्रोटीन की कमी से यह जीन प्रभावित होता है। छोटे कद के पौधों में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन होता है, जिससे उसे सही पोषण मिलता है। बड़े पौधों में प्रोटीन की कमी हो जाती है, जिससे पौधों का परिवर्धन सही तरह से नहीं हो पाता। इस जीन की खोज से धान की पैदावार में भरपूर वृद्धि की संभावना है। इस जीन के द्वारा अधिक उत्पादन के साथ धान की गुणवत्ता के साथ जल्द समय में फसल तैयार करने में सफलता मिल सकेगी, जिस से धान में आत्मनिर्भरता के साथ निर्यात में बढ़ोतरी हो सकेगी।

परमाणु ऊर्जा द्वारा विकसित मूँगफली

परमाणु ऊर्जा विभाग के नाभिकीय कृषि कार्यक्रम में अधिक उपज देने वाले फसलीय बीजों, उर्वरकों तथा खाद्य पदार्थों का विकिरण, संसाधन आदि करना शामिल है। फसलों की किस्म सुधारने के क्षेत्र में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने वाणिज्यिक खेती के लिए मूँगफली की उत्परिवर्ती टीपीजी -41 नामक नई किस्म रिलीज करके एक बड़ी सफलता हासिल की है। बड़े बीजों की इस कन्फेक्शनरी किस्म को मिलाकर अब तक फसलों की अलग-अलग 23 किस्मे ट्रांबे में विकसित की गई हैं। अखिल भारतीय स्तर पर उड़द की सभी किस्मों को मिलाकर प्रजनक बीजों की कुल राष्ट्रीय मांग में से 50 प्रतिशत से अधिक मांग उड़द की 4 किस्मों की है।

जैव आतंकवाद की पूर्व-सूचना देंगे पौधे

अमेरिका पर आतंकवादी हमले की बढ़ती आशंका के चलते हमले की पूर्व-चेतावनी देने के लिए पौधों पर आनुवंशिक परिवर्तन का कार्य शुरू किया गया है। ये आनुवंशिकत: परिवर्तित पौधे पर्यावरण में किसी भी हानिकारक रसायन या परजीवियों की उपस्थिति को देखते ही अपना रंग बदल लेंगे, ताकि वातावरण में विषैले व स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पदार्थ के होने की सूचना दी जा सके। पेन्सिलवेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी के रसायनज्ञ और कीट विज्ञानी जैक शुल्ट्ज के अनुसार पौधों में अगर आनुवंशिक परिवर्तन किए जाएं तो वे वातावरण में हानिकारक रसायनों और जैव हथियारों की पहचान करने वाले संवेदक बन सकते हैं। चूंकि इनकी जड़ें गहरी पैठी होती हैं इस कारण वे मैदान छोड़कर भागते नहीं है। श्री शुल्ट्ज इसी यूनिवर्सिटी के रमेश नैना के साथ मिलकर पौधों में कुछ इस तरह का परिवर्तन कर रहे है कि वातावरण में किसी भी तरह का जहरीला पदार्थ आने पर वे भूरे रंग के हो जाते हैं या फिर फ्लोरेसेंट हरे रंग में तब्दील हो जाते हैं।

सेहत बिगाड़ सकती हैं हरी सब्जियां

स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिए सेवन की जाने वाली हरी सब्जियां मानव-स्वास्थ्य के लिए घातक साबित हो रही हैं। इनमें स्वास्थ्य के लिए घातक रसायनों की मात्रा बहुत अधिक पाई गई है। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, टॉक्सिक लिंक डेवलपमेंट ट्रैक्स भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान और लंदन के इंपीरियल कॉलेज के वैज्ञानिकों के संयुक्त दल ने अपने अनुसंधान में इस तथ्य की पुष्टि की है। संयुक्त दल के मुताबिक दिल्ली के बाजारों में उपलब्ध पालक, गोभी और भिंडी समेत कई अन्य हरी सब्जियों में शीशा, जिंक और कैडमियम जेसे स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह धातुओं की मात्रा बहुत अधिक पाई गई है। दल ने परीक्षण के दौरान पाया कि पालक के 135 नमूनों में सीसे की मात्रा स्वीकृत सीमा से दोगुनी अधिक थी, इसी प्रकार गोभी और भिंडी में भी धातुओं की मात्रा मानक से बहुत अधिक मिली है जो स्वास्थ्य के लिए काफी घातक सिद्ध हो सकती है।

नये लिंट क्लीनर का अविष्कार

अब कपास उपयोगी लिंट क्लीनर के आविष्कार से कम खराब होगी तथा अकेले गोले का वजन भी लगभग 10 पाउंड गिन्नी तक बढ़ जाएगा। इससे कपास उत्पादक किसानों की आय बढ़ने की संभावना है। यह संभव होगा कपास गिनिंग अनुसंधान यूनिट स्टेनिबिल के कृषि अनुसंधान सेवा के इंजीनियर स्टेबली एटोनी के अविष्कार से अभी तक कपास में बीज से लिंट क्लीनर उसमें से अन्य बाहरी पदार्थ अलग कर देता था, जिससे कपास का वजन घटने के साथ ही मूल्य भी कम मिलता था। लिंट क्लीनर अवस्था में 500 पाउंड कपास बॉल में से 20 पाउंड बॉल खराब हो जाते थे। इस नई लिंट क्लीनिंग तकनीक में सॉ-सिलेंडर लगा है जो रेशों को बार बार प्रोसेस करके कम से कम अपशिष्ट कपास छोड़ेगा। इस नए लिंट क्लीनिंग तरीके से अच्छे कपास को पत्तियों, तने, घास व बीज से अलग बचाया जा सकेगा तथा उत्तम रेशे का कपास मिल सकेगा। इस नई तकनीक का फील्ड पर प्रदर्शन करके देखा गया जिसके परिणाम काफी अच्छे रहे। चालू वर्ष से ही इसके व्यावसायिक उपयोग की संभावना है।

संक्रमण से बचाता है चाय का सेवन

चाय के शौकीनों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि रोजाना कई कप चाय पीने से शरीर की संक्रमण से लड़ने की शक्ति बढ़ती है। चाय के कारण शरीर बैक्टीरिया और वायरस से मुकाबला करने की नई शक्ति पाता है। यह शोध अमेरिका के हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय और ब्रिघम ऐन्ड वीमेन्स हॉस्पिटल के वैज्ञानिकों ने की और पाया कि ऐसे गुण कॉफी में नहीं

हैं। दुनिया के कई देशों में चाय बेहद लोकप्रिय है लेकिन अमेरिका में लोग कॉफी पीना ज्यादा पसंद करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि यह शोध अमेरिका में ही किया गया। वैज्ञानिकों ने पाया कि चाय में मिलने वाला एक ऐमीनो एसिड एल -मियानाइन मानव शरीर में बीमारियों से लड़ने वाली पहली सुरक्षा दीवार को मजबूत करता है। इससे बैक्टीरिया और वायरस से लड़ने की शरीर की क्षमता बढ़ जाती है।

गन्ने की नई जाति विकसित की गई

गोविंद बल्लभ पंत विश्वविद्यालय के गन्ना वैज्ञानिकों ने गन्ने की उपज देने वाली नई जाति पंत 97222 विकसित की है। यह जाति मध्यम पकने वाली है और 850-1000 प्रति हेक्टेयर देती है। इसमें जूस की मात्रा 16 से 20 प्रतिशत और चीनी की मात्रा 10 से 13 प्रतिशत तक होती है। नई जाति पंत 97222 कम पानी और अधिक ठंड से भी अच्छी पैदावार देती है। यह गन्ने की लाल सड़न रोग के प्रति अवरोधी है। इस जाति का गन्ना मोटा व सीधा और अंगोला हरा रहता है जिसे चारे के रूप में प्रयोग किया जाा सकता है। यह जाति उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में बुआई के लिए संस्तुत की गई है।

रेशम की नए किस्म पर अनुसंधान :

रेशम व्यवस्था में भारत के 60,000 से ज्यादा गांवों के साठ प्रतिशत लोगों को रोजगार मिलता है। रेशम उत्पादन में भारत का दुनिया में दूसरा स्थान है। लेकिन चीन (69 प्रतिशत) की तुलना में हमारा उत्पादन बहुत कम (18 प्रतिशत) है। अपनी घरेलू मांग को पूरा नहीं कर पाने के कारण भारत को हर वर्ष 7000 टन रेशम चीन से मंगाना पड़ता है। देश में रेशम के कम उत्पादन के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण शहतूत के वृक्षों का सूखे व खारेपन से प्रभावित होना भी है। शहतूत की पहली बार डीएनए फिंगरप्रिंट तकनीक के जरिए शहतूत को 250 से अधिक जातियों के अध्ययन के आधार पर विस्तृत डेटाबेस तैयार किया है। इसके अलावा रेशम के कीड़ों की नई व पराजीनीत किस्म तैयार करने के लिए भी शोध किए जा रहे हैं।

चने की वल्लभ कल्लर चना-1 जाति विकसित

चने की विकसित नई किस्म वल्लभ कल्लर चना-1 जाति विकसित सी 235 के उत्परिवर्तन के बाद पैदा की गई है। यह अर्ध फैलाव वाली, बड़े दाने वाली जाति है। इस किस्म के तने, टहनियों एवं पत्तियों के किनारे पर गहरे लाल रंग का वर्णक होता है। इसमें फल आने की अवधि 70 दिन एवं पकने की अवधि 135 दिन है। इस जाति की उत्पादन क्षमता 19.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इससे उत्तम श्रेणी की 70 प्रतिशत दाल प्राप्त होती है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 23 प्रतिशत है। यह उकठा एवं क्षेत्र में लगने वाली अन्य बीमारियों के प्रति अवरोधक है। यह कल्लर भूमि के लिए उपयुक्त है। उत्तर प्रदेश में लगभग 9 लाख हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल में चने की खेती की जाती है तथा 8 लाख मेट्रिक टन के लगभग उत्पादन प्राप्त होता है। चने की औसत उत्पादकता 8.93 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। उन्नतशील जातियों के चयन तथा संस्तुत सस्यन क्रियाओं द्वारा हम इस उत्पादकता को और भी बढ़ा सकते है। औसत उपज तथा अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों की औसत उपज में पाए जाने वाले अंतर को कम करने के लिए एकीकृत एवं सघन जातियों की आवश्यकता महसूस की जा रही है ताकि प्रदेश में चना उत्पादकता को और अधिक बढ़ाया जा सके।

जी.एम.बीज किसानों के हित में

कृषि मंत्रालय भारत सरकार का मानना है कि देश में किसानों के संकट का एक बड़ा हल आनुवंशिकत: परिवर्तित (जीएम) फसलों और ठेका खेती को बढ़ावा देना है। प्रधानमंत्री के सामने कृषि क्षेत्र के विकास की गति बढ़ाने के लिए कृषि सचिव श्रीमती राधा सिंह द्वारा दिए गए प्रस्तुतीकरण में इन दो बातें पर ही सबसे अधिक जोर रहा। जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूअल कमेटी (जीईएसी) ने आंध्रप्रदेश के लिए मोनसैटो-महिको की बी.टी. कॉटन की एक किस्म को मंजूरी देने से इनकार कर दिया जबकि इसी बैठक में आंध्र प्रदेश सहित अन्य राज्यों के लिए बी.टी. कॉटन की सात किस्मों की मंजूरी दे दी गई और तीन किस्मों की मंजूरी का नवीकरण कर दिया। सरकार में उच्च पदस्थ सूत्रों के मुताबिक कृषि सचिव ने प्रधानमंत्री को दिए प्रस्तुतीकरण में कहा कि अगले एक साल में बी.टी. कॉटन के क्षेत्रफल में 75 फीसदी की बढ़ोतरी हो जाएगी। साथ ही उनका तर्क था कि उत्पादन स्तर भी 550 किलो प्रति हेक्टेयर पर चला जाएगा। जीईएसी की बैठक में बी. टी कॉटन की सात किस्मों को देश के दक्षिणी और मध्य हिस्सों में व्यावसायिक खेती के लिए अनुमति दे दी गई है। वहीं मोनसैटो- मूहिकों की तीन पुरानी किस्मों की मंजूरी का नवीकरण भी कर दिया। यह बात अलग है कि मोनसेटो की मैक -12 किस्म को आंध्र प्रदेश में उगाने की इजाजत नहीं दी गई है। यह फैसला उन दावों को पुष्ट करता है जिनमें आंध्र प्रदेश में बी.टी. कॉटन के असफल रहने की बात कही गई है। सूत्रों के मुताबिक गैर-सरकारी संगठनों के भारी दबाव के चलते यह मंजूरी रोकी गई, हालांकि जो दूसरी किस्में मंजूर की गई है उनमें एक किस्म मैक- 6322 दक्षिणी क्षेत्र के लिए है और उस स्थिति में यह आंध्र प्रदेश में बेची जा सकेगी। दूसरी ओर महिको की मैक -162, मैक -184, मैक -12 को आंध्र प्रदेश के अलावा बाकी दक्षिण राज्यों में बेचने की दोबारा इजाजत दे गई जबकि महिको की एमआरसी -6301, 6918 को मध्य क्षेत्र के लिए और एमआरसी-6322 को दक्षिणी क्षेत्र के लिए इजाजत दे गई। राशि सीड्स की आरसीएच -144 और आरसीएच -118 को मध्य क्षेत्र व अंकुर सीड्स की अंकुर -615 व अंकुर -9 को भी मध्य क्षेत्र के लिए इजाजत दे गई। बी. टी. कॉटन का विरोध करने वाले संगठन इस मंजूरी और कृषि सचिव के प्रस्तुतीकरण को केवल एक संयोग नहीं मान रहे हैं। ठेका खेती के बारे में तर्क देते हुए कृषि सचिव ने प्रस्तुतीकरण में कहा कि इसका मकसद किसान और उद्योग को सीधे जोड़ना है क्योंकि इससे किसान और उद्योग दोनों का फायदा होगा। बीज बदलने के बारे में कृषि सचिव का दावा काफी महत्वकांक्षी था और उनका कहना है कि 11 वीं योजना तक बीज बदलने का अनुपात 50 फीसदी पर ले जाने का लक्ष्य है। फिलहाल यह अधिकांश फसलों में दस फीसदी से भी कम है।

पहला पारजीनी (ट्रांसजेनिक) शहतूत

भारत ने दुनिया में पहली बार शहतूत का ऐसा ट्रांसजेनिक पौधा तैयार किया है जो सूखे और खारेपन को बर्दाश्त करने की सामर्थ्य रखता है। पौधे को दिल्ली विश्विद्यालय के साउथ कैंपस में नए गुणों के प्रस्फुटन की जांच के लिए रखा गया है। डिपार्टमेंट ऑफ बायोटेक्नोलॉजी ने सूखे और खारेपन को झेलने वाली एचबीए-1 नामक जीन के विकास की परियोजना को आर्थिक सहायता दी। कर्नाटक, आध्रंप्रदेश, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में उगाई जाने वाली शहतूत की फसल को इन दो मुसीबतों से खासा नुकसान पहुंचता है। उल्लेखनीय है कि हमारे देश में उत्पादित होने वाला 90 प्रतिशत रेशम शहतूत पर पलने वाले कीड़ों से निकलता है, फिलहाल देश में बतौर कुटीर उद्योग रेशम उत्पादन क्षेत्र से 2,650 करोड़ रुपए का विदेशी कारोबार होता है

बीटी कॉटन की कुछ और किस्मों को पर्यावरण मंत्रालय की मंजूरी मिली

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की जेनेटिक इंजीरियरिंग मंजूरी समिति ने बी.टी. कॉटन की कुछ और किस्मों को मध्य व दक्षिण भारत में उगाने के लिए मंजूरी दे दी है। जबकि एक मामले में समिति ने सिर्फ मध्य भारत के लिए स्वीकृत दी है। सूत्रों के मुताबिक जेनेटिक इंजीरियरिग मंजूरी समिति की बैठक में नुजीवीड सीड्स लि. की बीटी कॉटन हाइब्रिड एनसीएस -145 बिन्नी बीटी एनसीएस -207 और मल्लिका बीटी को मध्य भारत के महाराष्ट्र, गुजरात व मध्य प्रदेश और

दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक के लिए स्वीकृति दी गई है। इसी तरह अजीत सीड्स लि. की एसीएच -155-1 बीटी कॉटन को दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक में बड़े पैमाने पर परीक्षण और उत्पादन की मंजूरी मिली है। इसके साथ ही अमेरिका की मोनसैटो कंपनी के साथ कारोबार करने वाली महिको के एमआरसी -6355 बीजी -1 को दक्षिण और मध्य भारत के छह राज्यों के लिए मंजूरी मिली है। कहा गया है कि कंपनी इसके परीक्षण के साथ ही बीज उत्पादन भी कर सकेगी।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा गेहूँ की सात नई किस्में विकसित

बेहतर गुणवत्ता और अधिक उपज देने वाली गेहूँ की सात और जौ की एक किस्म को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने किसानों के लिए जारी करने की अनुशंसा की है। देश के विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए इन किस्मों की पहचान अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ व जौ परियोजना के तहत धारवाड़ में की गई। नवीनतम किस्मों की प्रसस्करण-गुणवत्ता काफी अच्छी है जिनसे ब्रेड, बिस्कुट या पास्ता बनाने में फायदा होगा। पहली बार मध्य भारत के क्षेत्रों के लिए जल्द पक कर तैयार होने वाली नई किस्म (एच.आई. 1531 मध्यम ऊंचाई वाली बौनी किस्म) को मध्य भारत के असिंचित व नियंत्रित सिंचाई वाले क्षेत्रों के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के इंदौर स्थित क्षेत्रीय केंद्र ने विकसित किया है। असिंचित क्षेत्रों में एच.आई 153 की पैदावार 25 क्विटल प्रति हेक्टेयर है जबकि सिंचाई वाले क्षेत्रों में इसकी पैदावार 27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है इस क्षेत्र में प्रचलित अन्य किस्मों के मुकाबले एचआई 1531 में पैदावार क्षमता अच्छी है जो पत्तों के रतुआ रोग का प्रतिरोधी है। कम लागत और बाजार में जल्द उपलब्ध होने वाली यह किस्म किसानों के लिए उपयुक्त है। किसानों को अधिक पैदावार और बाजार मूल्य मिलने के कारण अच्छा फायदा होने की संभावना है। करनाल स्थित गेहूं अनुसंधान निदेशालय की नई किस्मों-डी बी डब्ल्यू 16 पीले और भूरे रतुआ रोगों के प्रति प्रतिरोधी है, जिसकी बुआई काफी देर से की जा सकती है। अन्य प्रचलित गेहूं की किस्मों के मुकाबले यह पत्तियों के झुलसा रोग की प्रतिरोधी है। इस किस्म की बुआई उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में ही की जा सकती है उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में ही गेहूं की उपज का 40 प्रतिशत उत्पादन होता है। डी बी डब्ल्यू 16 की औसत उपज 39 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है जो 120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित एच.डी 2888 किस्म उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जो तने के रतुआ रोग के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी और पत्तियों के झुलसा रोग के प्रति सामान्य प्रतिरोधी है। 23 क्विंटल प्रति हेक्टयर औसत उपज वाली इस किस्म से बेहतर गुणवत्ता वाला आटा तैयार किया जा सकता है। महाराष्ट्र कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, गोवा और तमिलनाडु के लिए गेहूं की दो नई किस्मों की पहचान की गई है। एन आइए 917 की अच्छी पैदावार क्षमता के साथ-साथ रोगों की प्रतिरोधी है और गुणवत्ता भी अच्छी है। पंजाब कृषि विश्वविदयालय द्वारा विकसित पी.बी. डब्ल्यू 533 चपाती के लिए उपयुक्त है। यही नहीं ब्रेड व बिस्कुट बनाने के लिए इसकी गुणवत्ता उत्तम है। अकोला स्थित डा. पंजाब राव देशमुख कृषि विद्यापीठ द्वारा विकसित ए.के. डी. डब्ल्यू 2997-16 से किसानों की कई मुश्किलें अब खत्म हो जाएंगी। अधिक उपज और अच्छी गुणवत्ता वाली इस किस्म से असिंचित क्षेत्रों के किसानों की अभिलाषा पूरी हुई है। तना और पत्तियों के रतुआ रोग की प्रतिरोधी गेहूँ की एक अन्य किस्म डीडी. 10254 जिसकी उपज 38 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए है। शून्य जुताई अर्थात् जीरो टिलेज तकनीक की लोकप्रियता उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में काफी बढ़ चुकी है, और किसान इसे अपनाने लगे हैं। गेहूँ बुआई करते समय इस तकनीक से भरपूर लाभ लेने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए है। एक तिहाई

4690 HRD/10—6 A

नाइट्रोजन 50 किलोग्राम/हेक्टेयर और फॉस्फोरस 60 किलोग्राम/हेक्टेयर और पोटाश 40 किलोग्राम/हेक्टेयर की मात्रा गेहूँ की बुआई करते समय दे देने से शून्य जुताई तकनीक का भरपूर फायदा होता है और अधिक उपज मिलती है। शेष दो तिहाई नाइट्रोजन की मात्रा बुआई के 45 दिन बाद दी जानी चाहिए। खरपतवार नियंत्रित करने के भी अन्य उपयोगी सुझाव दिए गए हैं जिन्हे अपनाकर गेहूँ की अच्छी पैदावार की जा सकती है।

प्रसंस्करण उद्योग के लिए आलू की नई किस्म चिप्सोना

आलू के प्रसंस्करण से जुड़े उद्योग के लिए कुफरी चिप्सोना-3 नामक हाइब्रिड किस्म एक नई दिशा है। इस किस्म में स्वाद के साथ सेहत का समागम है। चिप्सोना-3 किस्म की पौष्टिकता बेहतर है क्योंकि इसमें प्रोटीन, पोटैशियम और कैल्सियम की मात्रा अधिक है। इसमें उपलब्ध तत्वों के कारण चिप्सोना -3 उच्च रक्तचाप वाले लोगों के खाने के लिए उपयुक्त है। आलू के शुष्क पदार्थ जैसे चिप्स क्यूब आदि बनाने के लिए चिप्सोन-3 आल की अन्य प्रचलित किस्मों से बेहतर है। प्रोसेसिंग के लिए चिप्सोना-3 की गुणवत्ता काफी उपयुक्त है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने शिमला स्थित केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित चिप्सोना-3 की पहचान की है जो शीघ्र ही किसानो के लिए जारी की जाएगी। आलू प्रसंस्करण के लिए उद्योगों को ऐसी किस्म चाहिए जो बेहतर चिप्स रंग और गुणवत्ता के साथ-साथ कम शर्करा एवं अधिक शुष्क पदार्थ वाला हो।

आलू की यह नई किस्म आंतरिक व बाह्य खूबियों से भरपूर है। देश में विकसित आलू की दो किस्में खासकर प्रसंस्करण के लिए जारी की गई है। चिप्सोना-3 के आ जाने से प्रसंस्करण उद्योगों को एक अतिरिक्त हाइब्रिड किस्म मिल जाएगी। प्रोसेसिंग के लिए निर्धारित मापदंडों पर चिप्सोना-3 बेहतर है। पकने के बाद चिप्सोना 3 से अच्छी सुगंध आती है। यही नहीं, इसका रंग पकने बाद भी पहले जैसा ही बना रहता है। प्रचलित आलू की नई किस्म में कंद फटने अथवा अनियमित आकार होने की शिकायत आती है परंतु चिप्सोन-3 में ऐसी बात नही है। नई संकर किस्म चिप्सोना-3 की उपज 333 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। चिप्सोना-3 की उपज पहले से जारी प्रसंस्करण की दो अन्य किस्मों, चिप्सोना-1 (278 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) और चिप्सोना-2 (272 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) के मुकाबले लगभग 55 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अधिक है। इस किस्म में बीस प्रतिशत शुष्क पदार्थ की मात्रा है जो अंतदराष्ट्रीय गुणता मानक पर खरा उतरता है। पछेता झुलसा प्रतिरोधी चिप्सोना-3 के कंदों का गोल-अंडाकार आकार प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त है। चिप्स और फ्लेक्स के लिए उत्तम चिप्सोना-3 का उपयोग सामान्य रूप से खाने के लिए भी किया जा सकता है। पश्चिमी-मध्य मैदानी क्षेत्रों के किसानों को, पछेता झुलसा-प्रतिरोधिक गुण होने के कारण, उम्मीद है कि प्रचलित लोकप्रिय आलू की किस्म कुफरी बहार के बदले अच्छा विकल्प मिल गया है। अब किसान बेहतर गुणवत्ता वाले प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त चिप्सोना-3 बो कर ज्यादा मुनाफा अर्जित कर सकते हैं, क्योंकि आलू आधारित उद्योगों द्वारा ज्यादा शुष्क पदार्थ देने वाली किस्में अधिक कीमत पर खरीदी जाती है।

आलू की दूसरी संकर किस्म कुफरी हिमालिनी पहाड़ों में खेती करने के लिए परिषद् द्वारा पहचानी गई है। पिछले कुछ सालों से इस क्षेत्र में पछेता झुलसा के कारण किसानों को मुश्किल हो रही है। उपोष्ण मैदानी क्षेत्रों के लिए भी कुफरी गिरिराज की तुलना में कुफरी हिमालिनी से 10 प्रतिशत अधिक पैदावार की जा सकती है। 110-120 अवधि में तैयार होने वाली इस किस्म की भंडारण गुणवत्ता पहाड़ी क्षेत्रों की अन्य किस्मों से अच्छी है। ग्रीष्म काल में कुफरी हिमालिनी की बुआई उत्तर-पश्चिमी व उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में की जा सकती है। भारत विश्व में तीसरा देश है जहां 12.7 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में आलू की खेती की

4690 HRD/10—6 B

जाती है और 231 20 लाख टन आलू का उत्पादन होता है। वर्ष 2003-04 के दौरान आलू की पैदावार 18.2 टन प्रति हेक्टेयर थी। उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, बिहार, पंजाब, गुजरात और मध्य प्रदेश ऐसे प्रांत है, जहां आलू की खेती प्रमुखता से की जाती है। उत्तर प्रदेश में आलू का उत्पादन सर्वाधिक होता है जबकि पश्चिमी बंगाल में आलू की पैदावार अधिकतम 24.7 टन प्रति हेक्टेयर है। देश में विकसित अभी तक लगभग 38 आलू की किस्में जारी की जा चुकी हैं जिनसे आलू का उत्पादन बढ़ा है।

दलहन फसलों की छह नई किस्मों की पहचान

देश के विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने दलहनी फसलों की छह नई किस्मों की पहचान की है। इन नई व उन्नत किस्मों में तीन चने की हैं जिनमें दो देसी व एक काबुली चने की है। इसमें अन्य दलहनी फसलों की किस्मों में मटर, मसूर और मूंग की एक-एक किस्म शामिल है। पिछले दिनों आयोजित रबी दलहन समूह की वार्षिक बैठक में इन किस्मों का चुनाव करके जारी करने के लिए परिषद् ने अनुमोदित किया है।

बी जी एम 547 नामक देसी चने की किस्म भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने विकसित की है जो उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में देर से बुआई के लिए उपयुक्त है। बीस वर्षों बाद उत्परिवर्तन प्रजनन (म्यूटेशन ब्रीडिंग) द्वारा इस चने की किस्म को विकसित किया गया। बी जी एम 547 की औसत उपज 1800 किलो प्रति हेक्टेयर है जो कि अन्य किस्मों की तुलना में लगभग 16 प्रतिशत अधिक है। यह किस्म सिंचित व असिंचित दोनों क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है, और इनकी देर से बुआई की जा सकती है। बी जी एम 547 की सामान्य परिपक्वता 135 दिन है इसका पौधा मुरझान, जड़-सड़न और विषाणु-रोग के प्रति सहनशील पाया गया है। देसी चने की दूसरी किस्म फुले जी 9425-9 महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ राहुरी द्वारा विकसित की गई है जिसकी उपज 1800 किग्रा. प्रति हेक्टेयर है। उत्तर-पश्चिमी मैदानी सिंचित क्षेत्रों में देर से बुआई की जाने वाली किस्म फुले जी 9425-9 की परिपक्वता 136 दिन है। इसका पौधा मुरझान-प्रतिरोधी है। इस किस्म से दाल उत्पादन क्षमता 76 प्रतिशत है। काबुली चना की श्रेणी में बी.जी.डी. -128 किस्म मध्य क्षेत्र के लिए दोहरी फसल प्रणाली में अति उपयुक्त है। औसतन 116 दिनों में पककर तैयार हो जाने वाली इस किस्म के दानों की गुणवत्ता बेहतर है। इस मध्य क्षेत्र में अन्य चने की किस्मों के मुकाबले इसकी उत्पादकता 1900 किलो प्रति हेक्टेयर है। धारवाड़ स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय केंद्र द्वारा विकसित बी जी डी- 128 मुरझान, जड़-सड़न, विषाणु रोग व फली बेधक के प्रति थोडी प्रतिरोधी पाई गई है। दलहनी फसल के तहत आईपी एफडी 1-10 नामक मटर की पैदावार 2100 किग्रा प्रति हेक्टेयर है। इस किस्म की बुआई सामान्यत खरीफ फसल में सामान्य समय पर या रबी में देर से या खरीफ फसल की कटाई के पश्चात् की जा सकती है। मध्य क्षेत्र व उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में खेती के लिए उपयुक्त आई.पी.एफ. डी 1-10 को भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर ने विकसित किया है। मात्र 109 दिनों में परिपक्व होने वाली यह किस्म अधिकाधिक क्षेत्रों में स्वीकार्य है, जो रोग-प्रतिरोधी भी है।

विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा विकसित मसूर की नई किस्म एल मसूर 507 उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जो 179 दिनों में पकती है। उत्तराखंड की पहाड़ी के लिए अब तक बड़े दानों वाली मसूर की कोई ऐसी किस्म नहीं थी जिससे यहां के किसानों की जरूरत पूरी हो। ग्रीष्म में गेहूं की तुरंत कटाई के बाद खेती करने के लिए पतले मूंग की जीनोटाइप किस्म बीएच. यू.एम-16 की पहचान प्राप्त हुई है। मात्र 60 दिनों में तैयार होने वाल मूंग की यह किस्म बाजार की मांग के अनुरूप है। क्लो मोजैक वायरस प्रतिरोधी होने के कारण इसकी लोकप्रियता अच्छी है। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने इसे विकसित किया है। प्रजनक बीज उत्पादन कार्यक्रम की सफलता के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने व्यापक सुधार कार्य किए हैं। इसके तहत सभी राज्यों के कृषि निदेशालयों को सलाह दी गई है कि पांच वर्षो के भीतर ही विकसित किस्मों को इस कार्यक्रम में शामिल करें। किस्मों की सूची का नवीकरण, उपयुक्त किस्मों का उत्पादन आदि कार्यक्रम के संबंधित परियोजना समन्वयक को उचित प्रयास करने के लिए कहा गया है। कृषि सहकारिता विभाग एवं तिलहन निदेशालयों के सहयोग से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन कार्यक्रम में का सुचारु रूप से संचालन करके उसे अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयासरत है। जैव क्षमता में वृद्धि करने के लिए राष्ट्रीय पादप आनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर, एकासेट, हैदराबाद और आइकारडा द्वारा परस्पर तालमेल से जर्मप्लाज्म नर्सरी पर विशेष बल दिया जा रहा है। वर्ष 2003-2004 में दलहन फसलों की खेती वाले क्षेत्र में बढ़ोतरी हुई है। दलहन वाले कुल क्षेत्र 244.50 लाख हेक्टेयर है।

❑

शब्दावली का विकास

अपनी स्थापना से लेकर वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने अब तक विश्वविद्यालय स्तर पर पढ़ाए जाने वाले ज्ञान-विज्ञान के सभी प्रमुख अकादमिक विषयों में, विधि को छोड़कर लगभग 8 लाख तकनीकी शब्दों का निर्माण एवं विकास किया है। हिंदी के अतिरिक्त, उड़िया, बोडो, मणिपुरी तथा पंजाबी भाषाओं में भी लगभग 5 लाख शब्द बनाए जा चुके हैं। आयोग द्वारा विकसित हिंदी व अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के इस विशाल शब्द-भंडार की सहायता से अध्ययन-अध्यापन, मौलिक लेखन, अनुवाद आदि कार्य दिन-प्रतिदिन आसान होते जा रहे हैं।

आयोग द्वारा अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में लगभग 20 हजार ऐसे शब्दों का निर्माण किया गया है जिन्हें सभी भारतीय भाषाओं में स्वीकृत माना गया है। ये शब्द 20 अलग-अलग विषयों की शब्दावलियों के रूप में प्रकाशित किए गए हैं और उनका एक समेकित अखिल भारतीय शब्दावली का संकलन भी उपलब्ध है।

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों व संस्थानों में रोज-मर्रा के प्रशासनिक कार्य में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से आयोग ने लगभग 12 हजार शब्दों की एक प्रशासनिक शब्दावली तैयार की है जिसे 10 रु. एक प्रति कीमत पर सरकारी कार्यालयों को उपलब्ध कराया जाता है। इस शब्दावली के अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी दोनों संस्करण उपलब्ध हैं। देश के अनेक सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यालयों की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग हेतु उनके कार्यों से संबंधित विभागीय शब्दावलियाँ भी आयोग द्वारा अनुमोदित की गई हैं।

7

वैश्विक तापवृद्धि: खतरे में धरती

डॉ दीपक कोहली

'वैश्विक तापन' या 'वैश्विक तापवद्धि' एक अति गंभीर वैश्विक पर्यावरणीय समस्या है। इस घटना के अध्ययन हेतु व्यापक शोध कार्य हुए हैं। नि:संदेह यह एक ज्वलंत मुद्दा है। सूर्य की किरणें, जो पृथ्वी पर पहुंचती हैं, उनके तरंग दैर्घ्य की लंबाई 0.58 से 0.69 ऐंग्स्ट्रम तक होती है। इनका एक अंश वायुमंडल तथा पृथ्वी की परतों द्वारा अवशोषित हो जाता है और शेष पृथ्वी की परतों से परावर्तित होकर लौट जाता है। परावर्तित विकिरण के तरंगदैर्घ्य की लंबाई 10 ऐंग्स्ट्रम होती है। जलवाष्प के साथ वायुमंडल में उपस्थित गैसें CO_2, CFC, CH_4, N_2O इत्यादि इस परावर्तित विकिरण को अवशोषित कर लेती हैं। इससे 'ग्रीन हाउस' की भांति वायुमंडल गर्म हो जाता है। विभिन्न गैसों की लगातार बढ़ रही सांद्रता के कारण पृथ्वी के वायुमंडल का ताप बढ़ने से संपूर्ण विश्व में जो प्रभाव उत्पन्न हुआ है, उसे ही वैश्विक तापन या तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) कहते हैं।

वैज्ञानिकों की राय में आज धरती पर मंडराता सबसे बड़ा संकट इसके गर्म होने से संबंधित है। एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में ब्रिटेन के 'हैडले सेंटर फॉर क्लाइमेट चेंज' के वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट में यह कहा गया है कि मौजूदा सदी (अर्थात् 21 वीं सदी) के अंत तक धरती का औसत ताप 6^0 सें. बढ़ जाएगा। इससे सन् 2050 तक सागरों का जल-स्तर 21 सेंटीमीटर ऊपर उठ जाने की संभावना है। सन् 2050 तक सागर तट पर बसने वाले 10 करोड़ लोग बेघर हो सकते हैं तथा आगामी 30 वर्षों में यह संख्या दुगुनी हो सकती है। साथ ही, इसके कारण अफ्रीका के ज्यादातर हिस्सों में खेती-बाड़ी संभव नहीं रहेगी, जिससे लगभग तीन करोड़ लोग भुखमरी के शिकार हो जाएंगे। दुनिया के 17 करोड़ लोगों को पीने के पानी के भीषण अकाल का सामना करना पड़ेगा। सन् 2050 तक अमेजन का विश्व-प्रसिद्ध वर्षा-वन रेगिस्तान में बदल जाएगा, जिससे जल-प्रलय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

वैश्विक तापवृद्धि आज केवल एक अनुमान नहीं है, बल्कि यह एक डरावनी वास्तविकता है, जो काफी तेजी से अपने पांव पसार रही है। वैज्ञानिक आकड़ों से पता चलता है कि पिछली सदी के दौरान धरती का औसत ताप आधा डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ चुका है। लगातार बढ़ते पृथ्वी के ताप के कारण धरती पर ग्लेशियर के रूप में जमे बर्फ के विशाल भंडार पिघलने लगे हैं। बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक नवीनतम रिपोर्ट में यह बताया है कि ग्रीनलैंड का ग्लेशियर शीघ्र ही पिघलने वाला है। भारत में भी हिमालय-स्थित ग्लेशियरों ने पिघलना शुरू कर दिया है। दूसरी ओर, यह आशंका भी व्यक्त की गई है कि मौजूदा सदी के मध्य तक धरती 'हिम युग' में प्रवेश कर जाएगी।

वायुमंडल के ताप में वृद्धि अब तक वास्तविकता बन चुकी है। 1998 के शुरू के 6 महीनों में विश्व का ताप पिछले 120 वर्षों के इतिहास में सर्वाधिक आंका गया। ताप-वृद्धि की वर्तमान दर के अनुसार, वर्ष 2100 तक विश्व का ताप $1-2.5^0$ C तक बढ़ चुका होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि अगले कुछ दशकों में हमें ताप वृद्धि तथा ओजोन परत के क्षरण दोनों समस्याओं से एक साथ जूझना होगा। यदि सभी देश 'मॉन्ट्रियल समझौते' (1987) का पूरी तरह पालन करें, तो भी वर्ष 2100 में त्वचा कैंसर का खतरा अभी की तुलना में दुगुना रहेगा। यदि इस समझौते का पालन पूरी तरह से नहीं किया जाता है, तो यह खतरा चार गुना अधिक हो जायेगा। 'मॉन्ट्रियल समझौते' का पूरी तरह से पालन करने की स्थिति में वर्ष 2010 तक ओजोन की परत में सुधार आना शुरू हो जाएगा तथा वर्ष 2050 तक यह परत अपनी प्राकृतिक अवस्था में आ जाएगी।

वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के ताप में लगातार हो रही वृद्धि पर पिछले 50 वर्षों से हो रहे अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि ताप में इस वृद्धि के कारण पृथ्वी की अपनी धुरी पर घूमने की रफ्तार लगातार कम होती जा रही है, यद्यपि यह कमी काफी छोटी मानी जा सकती है।

एक अन्य नवीनतम शोध के अनुसार जर्मनी के वैज्ञानिकों का यह मानना है कि विश्व के बढ़ते ताप के कारण भविष्य में पैदा होने वाले बच्चों में बालकों की संख्या बढ़ सकती है। ज्ञातव्य है कि बालकों का लिंग निर्धारित करने वाले 'वाई-गुणसूत्र में गर्मी को सहन करने की अधिक क्षमता होती है, जबकि स्त्रीलिंग को निर्धारित करने वाला 'ऐक्स-गुणसूत्र' अधिक गर्मी नहीं सहन कर पाता है।

धरती को 'ग्रीन हाउस' प्रभाव से उबारने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास जारी हैं। परंतु अभी तक की की गई कार्यवाही की समीक्षा से इसमें ईमानदारी एवं प्रतिबद्धता की कमी साफ झलकती है, जबकि विशेषज्ञों की राय में इन प्रयासों को शुरू करने में काफी देर हो चुकी है। हमें और हमारी धरती को इस देरी का खामियाजा भुगतना पड़ सकता है। ग्रीन हाउस प्रभाव पर अंकुश लगाने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रथम संधि दिसंबर, 1997 में 'क्योटो सम्मेलन' (जापान) के दौरान हुई। इस संधि पर अब तक 84 देश हस्ताक्षर कर चुके हैं। इस संधि के तहत सन् 2008 से 2010 तक की अवधि में तीन प्रमुख ग्रीन हाउस गैसों अर्थात् कार्बन डाईऑक्साइड, मेथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड के 1990 के उत्सर्जन स्तर में औसतन पांच प्रतिशत कमी लाने का प्रावधान है। यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विकसित देशों द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर कड़ी पाबंदी लगाई जाए। यह उनकी नैतिक जिम्मेदारी भी है, क्योंकि औद्योगिक क्रांति के दौरान उन्होंने ही सबसे अधिक कार्बन डाईऑक्साइड वायुमंडल में उत्सर्जित की है। ज्ञातव्य है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में अमेरिका तथा कनाडा का ही 81% हिस्सा है, यूरोप का 13% तथा एशिया महाद्वीप का हिस्सा 6% है। परंतु, विकसित देशों पर वैज्ञानिकों की चेतावनी का कोई असर नहीं हो रहा है। कारण, उन्हें अपनी विकास की गति धीमी होती दिखाई दे रही है और उन्हें लगता है कि उद्योग-धंधों की रफ्तार कम हुई तो उनका मुनाफा घटेगा।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाने के लिए वैकल्पिक गैसों को तैयार करने की जरूरत महसूस की गई। जिसके लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वैकल्पिक प्रौद्योगिकी ढूंढने, उसे विकसित करने तथा उसे सभी देशों को उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सन् 1994 में वैश्विक पर्यावरण संस्था (ग्लोबल एनवायरन्मेन्ट फैसिलिटी) (G.E.F.) का गठन किया गया। आज दुनिया के 164 देश इसके सदस्य हैं। 'जेफ' की आर्थिक सहायता से 120 देशों में 500 से भी अधिक परियोजनाएं चलाई जा रही हैं। भारत में भी 'जेफ' के सहयोग से कई पर्यावरण परियोजनाएं चलाई जा रही हैं।

मई, 2002 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) तथा सेंटर फॉर एटमॉस्फियरिक साइन्सेज (सीएएस)

द्वारा कराए गए अध्ययनों से पता चलता है कि वैश्विक ताप वृद्धि अर्थात् ग्लोबल वार्मिंग का सबसे ज्यादा खराब असर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों-विशेषकर भारत पर पड़ेगा। इन अध्ययनों से इस भयावह स्थिति का खुलासा हुआ कि हिमालय के शिखरों पर जमी बर्फ तेजी से पिघलेगी, बंगाल की खाड़ी और उड़ीसा के तटों पर तूफान का खतरा कई गुना बढ़ जाएगा। पंजाब और हरियाणा जैसे उत्तर भारतीय क्षेत्रों में फसलों की उत्पादकता तो कम होगी ही, मॉनसून कब, कहाँ और कितना बरसेगा इसका अंदाजा लगाना मुश्किल हो जाएगा। मौसम छोटे होंगे और सूखे व बाढ़ की मार कहीं अधिक होगी।

वैश्विक ताप वृद्धि के भारत पर असर की एक खास बात यह रहेगी कि ताप सर्दियों के मौसम में ज्यादा बढ़ेगा। स्पष्ट है कि सर्दियां उतनी कड़क नहीं होंगी जितनी कि अब होती हैं, जबकि गर्मियों व मानसून के मौसम में ताप में ज्यादा बदलाव नहीं आएगा। मौसम छोटे होते जाएंगे जिसका सीधा असर वनस्पतियों पर भी पड़ेगा और कम समय में उगने वाली सब्जियों व फलों को तो पकने का भी पूरा समय नहीं मिल पाया करेगा।

सेंटर फॉर एटमॉस्फियरिक साइन्सेज के एक अध्ययन-पत्र के अनुसार सन् 2050 तक भारत का धरातलीय ताप 3° सेल्सियस से ज्यादा बढ़ चुका होगा। सर्दियों के दौरान यह उत्तरी व मध्य भारत में 3° सेल्सियस तक बढ़ेगा तो दक्षिण भारत में केवल 2° तक। इससे हिमालय के शिखरों से बर्फ पिघलने लगेगी और वहां से निकलने वाली नदियों में जल बहाव तेज हो जाएगा। इस सबका मानसून पर यह असर पड़ेगा कि मध्य भारत में सर्दियों के दौरान वर्षा में 10 से 20 प्रतिशत तक कमी आएगी और उत्तरी पश्चिमी भारत में 30 प्रतिशत तक। भारत के विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्रों की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारत के कई क्षेत्रों में आम के पेड़ों पर बेमौसम बौर आ जाना, असमय वर्षा और मौसम में अप्रत्याशित परिवर्तन जैसी घटनाएं वैश्विक तापवृद्धि की ही परिचायक है।

भारत के 'स्पेस ऐप्लिकेशन सेंटर', अहमदाबाद के एक सर्वेक्षण में भारत के 466 से अधिक हिमनदों का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन से यह पता लगा कि जहाँ 1962 में चिनाब, पार्वती और बारपा बेसिन के हिमनदों का क्षेत्रफल 2077 वर्ग किमी. था, वहीं वर्ष 2001 तक यह क्षेत्र घटकर 1628 वर्ग किमी. रह गया। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, लखनऊ के अनुसार वर्ष 1971 से पहले दो सौ वर्षों में जहाँ गंगोत्री हिमनद प्रति वर्ष 10 मीटर की दर से सिकुड़ता हुआ करीब दो किलोमीटर कम हुआ, वहीं सन् 1971 से 2001 के मध्य इसके सिकुड़ने की औसत दर 30 मीटर रही जिससे वर्ष 2001 तक यह हिमनद अपने मूल स्थान से 870 मीटर और पीछे हट गया। यदि यही हाल रहा तो वर्ष 2030 तक शायद इस क्षेत्र के हिमनद खत्म भी हो जाएं तो कोई आश्चर्य की बात न होगी।

धरती के ताप में वृद्धि से जैवविविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना व्यक्त की जा रही है। वैश्विक तापवृद्धि से जानवरों और पौधों की लगभग 12 हजार जातियां नष्ट होने के कगार पर हैं। वैश्विक तापवृद्धि के कारण जलवायु में निरंतर परिवर्तन से विश्व की कुल पक्षी-जातियों में से 72 प्रतिशत पक्षी-जातियों पर विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तन से सर्वाधिक खतरा कीट, पक्षियों, प्रवासी पक्षियों, और पेंगुइनों को है। धरती के गरमाने पर सफेद भालू एवं पेंगुइन का जीवन संकटमय हो जाएगा। हाल ही में सैन डियागा स्थित 'स्क्रिप्स ओश्येनोग्राफी इंस्टीट्यूट' के वैज्ञानिकों के अध्ययन में यह बात स्पष्ट हुई कि वैश्विक तापवृद्धि के कारण हिम आच्छादित क्षेत्रों में रहने वाले पेंगुइन पक्षियों की 12 जातियां विलुप्तीकरण के कगार पर हैं। इसी तरह हिमनद क्षेत्रों में रहने वाले अनेक दुर्लभ प्राणियों के लुप्त हो जाने से जैव-विविधता में कमी आएगी। वैश्विक ताप वृद्धि से प्राणियों तथा वनस्पतियों के पारिस्थितिकीय क्षेत्र में बदलाव होने से उनके प्राकृतिक आवास-स्थल सीमित या नष्ट हो जाने के परिणामस्वरूप जैव विविधता तहस-नहस हो जाएगी।

वैश्विक तापवृद्धि के कारण कृषि एवं अन्य प्राकृतिक खाद्य पदार्थों के उत्पादन में गिरावट होने के साथ ही जल समस्या भी उत्पन्न होगी। धरती के गर्म होने के कारण खाद्यान्न संकट की समस्या भी गहराएगी। बढ़े हुए ताप में भारत जैसी जलवायु वाले स्थानों पर गेहूँ की बालियाँ पर्याप्त विकसित नहीं हो पाएंगी।

ताप वृद्धि का स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा क्योंकि अधिक ताप पर कई कीटों की संख्या के बढ़ने से उनसे बीमारियों का खतरा बना रहेगा। इस प्रकार, ताप वृद्धि से जल, भोजन और स्वास्थ्य जैसी आधारभूत आवश्यकताएं भी दुष्प्रभावित होंगी।

मानव द्वारा प्रकृति के अति दोहन के कारण तपती धरती भयावह भविष्य का संकेत दे रही है। धरती पर जीवन की सुंदरता को बनाए रखने के लिए ताप वृद्धि पर नियंत्रण आवश्यक हो गया है। जीवाश्म ईंधन जैसे-तेल, कोयला आदि की बजाए प्रदूषण-रहित गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों जैसे- सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और ज्वारीय ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देना होगा। सामूहिक ही नहीं वरन व्यक्तिगत स्तर पर हमें प्रकृति को बचाने के प्रयास करने होंगे। वैश्विक तापवृद्धि का सामना करने के लिए वृक्षारोपण के द्वारा 'हरित-क्रांति' को सफल बनाना होगा। प्रकृति का अविवेकपूर्ण दोहन रोककर उसे हरियाली की चादर ओढ़ानी होगी, अन्यथा इस धरती पर जीवन मुस्कराना छोड़ देगा।

❑

बीटी कॉटन की कुछ और किस्मों को पर्यावरण मंत्रालय की मंजूरी मिली

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की जेनेटिक इंजीरियरिंग मंजूरी समिति ने बी.टी. कॉटन की कुछ और किस्मों को मध्य व दक्षिण भारत में उगाने के लिए मंजूरी दे दी है जबकि एक मामले में समिति ने सिर्फ मध्य भारत के लिए स्वीकृति दी है। सूत्रों के मुताबिक जेनेटिक इंजीरियरिग मंजूरी समिति की बैठक में नुजीवीड सीड्स लि. की बीटी कॉटन हाइब्रिड एनसीएस -145, बिन्नी बीटर एनसीएस -207 और मल्लिका बीटी को दक्षिणी भारत के महाराष्ट्र, गुजरात व मध्य प्रदेश और दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक के लिए स्वीकृति दी गई है। इसी तरह अजीत सीड्स लि. की एसीएच -155-1 बीटी कॉटन को दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक में बड़े पैमाने पर परीक्षण और उत्पादन की मंजूरी मिली है। इसके साथ ही अमेरिका की मोनसेंटो कंपनी के साथ कारोबार करने वाली महिको के एमआरसी -6355 बीजी -1 को दक्षिण और मध्य भारत के छह राज्यों के लिए मंजूरी मिली है। कहा गया है कि कंपनी इसके परीक्षण के साथ ही बीज उत्पादन भी कर सकेगी।

8

कीटों में सुरक्षा-तंत्र

डॉ. के.के. गुप्ता

मक्खी-मच्छरों, चींटियों, तिलचट्टों, टिड्डे-टिड्डियों आदि से हम सभी परिचित हैं। इन सभी प्राणियों का मिला-जुला सामूहिक नाम ''कीट'' है। कीट शब्द सुनते ही हमारा मन कसैला-सा हो उठता है और पहला विचार जो हमारे दिमाग में आता है वह यही है कि ये प्राणी गंदे और रोग फैलाने वाले हैं, और यह कि इन्हें देखते ही मार देना चाहिए। लेकिन कुछ कीट अत्यंत लाभकारी भी हैं, जैसे मधुमक्खी, रेशमकीट, लाखकीट, इत्यादि। संसार में शायद ही कोई ऐसा स्थान हो। जहां ये कीट न पाए जाते हों ये कीट हवा में, पानी में, जमीन पर, मिट्टी के नीचे, और जानवरों और पौधों के सड़ते-गलते मलबों में पनाह लेते पाए जाते हैं। गर्म-तपते भूमध्यरेखीय प्रदेशों से लेकर बर्फीले ध्रुव प्रदेशों तक सभी स्थानों पर कीट पाए जाते हैं।

दिन ढलने के बाद रात्रि होने पर जब सड़कों की बत्तियाँ जला दी जाती हैं तब बहुत बड़ी संख्या में भृंग, टिड्डे, छोटे-बड़े शलभ और न जाने कितने प्रकार के कीट-पतंगे, बिजली के इर्द-गिर्द मंडराने लगते हैं। इनमें से अनेक कीट तो बिजली के बल्बों और खंभों से टकरा कर मर कर वही ढेर हो जाते हैं। तब हजारों-लाखों चीटियां इन मृत कीटों को अपने बिलों मे खींच ले जाती हैं। तिलचट्टे भी अपना हिस्सा समेटने को वहां पहुच जाते हैं और बचे-खुचे, मृत कीड़ों पर हाथ साफ कर जाते हैं और इस प्रकार सुबह होते-होते उस स्थान पर शायद ही कोई मरा हुआ कीट पाया जाता है। इतना सब होते हुए भी कीटों की अपार संख्या में कोई कमी नहीं आती। अन्य जंतुओं के आक्रमण के खतरों से बचने के लिए, प्रकृति ने कीटों को अपना बचाव करने के लिए विलक्षण युक्तियां प्रदान की हैं। सांपों, छिपकलियों, पक्षियों जैसे बड़े-बड़े परभक्षियों का शिकार होने से बचने के लिए अनेक कीट, जैसे तितलियां, पर्णकीट, भृंग और टिड्डी आदि अपने शरीर का, विशेष रूप अपने पंखों का, रंगविन्यास इस तरह बदल लेते हैं कि वे अपने वातावरण में आसानी से छिपे रहते हैं और उन्हें उनके पर्यावरण से अलग करके पहचाना नहीं जा सकता या फिर उनका पूरा शरीर पौधों के पत्तों या टहनियों जैसा दिखाई देता है। पक्षियों द्वारा छिपे बैठे होने पर उन्हें आसानी से देखा नहीं जा सकता। कभी-कभी अहानिकर कीट डंक मारने वाले कीटों के रंग-रूप का स्वांग भर लेते हैं ताकि वे भी परभक्षियों के आक्रमण से बचे रहें।

अपने पर्यावरण की पृष्ठ-भूमि जैसा स्वांग भर लेना कीटों का अपनी सुरक्षा का सबसे सरल तरीका है। आम पाए जाने वाला तथा कर बद्ध मैन्टिस कीट प्राय: अपने शिकार की प्रतीक्षा में पेड़-पत्तियों के बीच बैठा रहता है। इनका लंबा दुबला-सा वक्ष तने अथवा पुष्प-वृंत से मिलता जुलता होता है; बीच की ओर पिछली टाँगों पर चपटे, हरे रंग के पत्ती जैसे विस्तार होते हैं। इन सब का मिला-जुला प्रभाव यह होता है कि कीट, पौधों में आसानी से छिपे बैठे रहते हैं। इनकी अगली टाँगों पर नुकीले दांत-जैसी संरचनाएं बनी होती हैं और ये चुपचाप घात लगाए अपने शिकार की तलाश में बैठे रहते हैं, और पलक झपकते ही उस कीट को अपनी अगली टाँगों में फँसा लेते हैं।

वर्षा-कीट और यष्टि कीट अपने परिपूर्ण छद्मावरण के लिए बेहतर जाने जाते हैं, और अपने रंग और रूप दानों में ही पत्ती अथवा टहनी से एकदम मिलते-जुलते होते हैं। यष्टि कीट पतला और बहुत लंबा होता है और उसकी टाँगे दुबली-पतली और लंबी होती हैं। अगली टाँगें आगे की तरह फैली होती हैं और टहनियों से मिलती-जुलती होती हैं। इस प्रकार ये कीट टहनियों के बीच चुपचाप छिपे बैठे रहते हैं। पर्ण-कीट चपटे आकार का और पत्तियों से एक दम मिलता जुलता होता है। इनके पंख पत्तियों की तरह हरे रंग के होते हैं। मजे की बात यह है कि इनके पंखों पर उसी प्रकार शिराएं बनी होती हैं जैसी कि पत्तियों पर बनी होती हैं। इनसे भी रोचक तथ्य यह है कि पर्ण-कीटों के अंडे भी कुछ-कुछ बीजों जैसे दिखाई देते हैं।

कीटों में अपनी पृष्ठभूमि से मिलते-जुलते रंगविन्यास के कुछ विचित्र उदाहरण तितलियों और शलभों में मिलते हैं। इसका सबसे जाना-पहचाना उदाहरण *बिस्टन बेटुलैरिया* में मिलता है। बर्मिंघम (इंग्लैड) में यह शलभ दो रूपों में पाया जाता है: एक अतिकृष्ण मेलैनिक रूप ओर दूसरा अकृष्ण (मैलेनिकेतर) रूप अतिकृष्ण रूप के शलभ काले रंग के होते थे, जबकि अकृष्ण रूप वाले शलभ चितकबरे धूसर रंग के। उन्नीसवीं सदी के आंरभ तक अतिकृष्ण अर्थात् काले रंग के शलभ दुर्लभ हुआ करते थे, जबकि अकृष्ण रूप वाले शलभ बड़ी संख्या में पाए जाते थे। काले रंग के शलभों की दुर्लभता का सबसे बड़ा कारण यह था कि हलके रंग और लाइकेन से ढके तनों पर बैठे ये कीट आसानी से पक्षियों के शिकार हो जाते थे। लेकिन अकृष्ण अर्थात् हल्के धूसर रंग के शलभ अपनी पृष्ठभूमि से आसानी से घुलमिल जाते थे और इस प्रकार ये परभक्षी पक्षियों की नजर में पड़ते ही नहीं थे और पर्याप्त संख्या में पाए जाते थे। लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद काले रंग के शलभों को बर्मिंघम जैसे औद्योगिक शहरों में भारी बदलाव से गुजरना पड़ा। हुआ यह कि कल-कारखानों से निकले गाढ़े धुएँ ने वृक्षों के तनों को काला कर डाला। धीरे-धीरे काले रंग के शलमों को अपनी पृष्ठभूमि में पक्षियों की नजर से बचने का मौका मिलने लगा और उनकी संख्या बढती गई। दूसरी तरफ हल्के धूसर रंग के शलमों की संख्या घटती गई, क्योंकि हल्के रंग के शलभ पक्षियों का आमानी के शिकार बनने लगे। धीरे-धीरे इन धूसर शलमों की संख्या घटने लगी।

कुछ अन्य शलभ और तितलियां सूखी पत्तियों जैसा रंग-रूप धारण कर लेते हैं। इन कीटों के शरीर पर ऊपर से नीचे तक लंबी-लंबी धारियां बनी होती हैं जो किसी पत्ती की शिरा के समान दिखाई पड़ती हैं। ऐसी ही एक तितली होती है मृतपर्ण तितली (कैलिमा) जब यह तितली पौधों पर बैठती है तो अपने पंखों को सूखी पत्तियों के बीच फैला लेती है और तब शतप्रतिशत उनके समान ही दिखाई देती है। इस तितली की ऊपरी सतह रंग-बिरंगी होती है, जबकि धूसर रंग की निचली सतह पर पंखों की बनावट वैसी ही होती हैं जैसी कि सूखी पत्ती पर बनी शिराएं दिखाई पड़ती है। पौधों के निचले फैले हुए भाग पत्ती के वृंत के समान दिखाई पड़ते हैं।

कुछ शलभों की इल्लियां (केटरपिलर) टहनियों की तरह होते हैं और पौधों की टहनियों पर मौजूद इन इल्लियों को देख पाना मुश्किल होता है। अपने रंग और रूप दोनों में ही ये टहनी जैसे दिखाई देते हैं।

कीटों में अपना बचाव करने का एक और अनूठा तरीका है- अपनी भाव भंगिमा को भयानक या डरावनी बना लेना। इसके लिए इनका रंग-विन्यास भी इतना आश्चर्यजनक होता है कि इन पर आक्रमण करने वाला जीव डर कर भाग जाए। इस रंगविन्यास में काले और पीले रंग प्रधान होते हैं। कुछ शलभ भड़कीले रंग वाले होते हैं, साथ ही उनकी पश्च पंखों पर गोलाकार आंख जैसे निशान भी बने होते हैं। जब ये शलभ बैठे भी हुए हों, तब भी अपने-पंखों को उठाते-गिराते रहते

हैं, और इस प्रकार उनकी भाव भंगिमा इतनी डरावनी हो जाती है कि आक्रमणकारी डर कर भाग ही जाता है।

कुछ तितलियाँ और शलभ, जिन्हें पक्षी बडे चाव से खाते हैं, अपना रंग-विन्यास ऐसी तितलियों और शलभों जैसा बना लेते हैं जो बेस्वाद होती हैं।

डंक से अपना बचाव करने के बारे में सामान्य रूप से सभी परिचित है। बर्र, ततैया आदि अपने डंक से अपने शत्रु के शरीर के भीतर जहरीले तरल का इंजेक्शन लगा देते हैं जिससे उसे पीड़ा तो होती है, यदाकदा उसकी मृत्यु भी हो जाती है। कुछ कीटों के शरीर पर दंशन-रोम भी होते हैं। कुछ अन्य कीट अपनी सुरक्षा करने के लिए रसायनों का भी उपयोग करते हैं और इसके लिए ये अपने शरीर में मौजूद ग्रंथियों से निकलने वाले स्रावों का पूरा-पूरा उपयोग भी करते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण है ''बमबारी'' करने वाला वह प्रक्षेपी भृंग जो उदर पर स्थित ग्रंथियों से स्राव को जल्दी-जल्दी और इतनी तेजी के साथ बाहर निकालता है कि फट-फट की आवाज होने लगती है।

कुछ चींटियां डंक मारने में असमर्थ होती हैं, लेकिन अपने उदर के सिरे पर से फॉर्मिक अम्ल की फुहार इतनी तेजी से निकालती हैं कि वह 10-12 इंच दूरी तक पहुंचती है। यष्टि मत्कुण (स्टिंक बग) अपने शरीर से बदबूदार स्राव निकालते हैं। इस स्राव में इतनी तेज दुर्गंध होती है कि कोई भी परभक्षी इनके पास आने की जुर्रत नहीं करता।

कीट-जगत् में चींटी के द्वारा अपनाए जाने वाली अनंत तकनीकों के सैकड़ों-सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। कुछ कीटों में तो सुरक्षा की एक नहीं बल्कि दो या अधिक तकनीकें भी मिलती हैं।

❑

विभागीय शब्दावली का निर्माण, अनुमोदन तथा मानकीकरण

शब्दावली आयोग विश्वविद्यालय-स्तरीय सभी विषयों की हिंदी तकनीकी शब्दावली का निर्माण करता है। अनेक विषय या शब्दावलियां ऐसी है जो विश्वविद्यालयी विषयों से संबद्ध न होकर सरकार के किसी विभाग-विशेष से संबंधित होती है, जैसे डाकतार विभाग की शब्दावली, रेलवे शब्दावली, रक्षा शब्दावली, रेशम शब्दावली, परमाणु ऊर्जा शब्दावली आदि। आयोग ऐसे विभिन्न विभागों, शोध संस्थानों, उपक्रमों, उद्यमों आदि से प्राप्त अंग्रेजी तकनीकी शब्दों से मानक हिंदी पर्यायों का भी निर्माण-अनुमोदन करता है। इन विभागों की तकनीकी शब्दावली के साथ-साथ उनके विशिष्ट पदनामों या कार्यालय-नामों आदि का भी अनुमोदन आयोग द्वारा किया जाना अनिवार्य है।

अपनी विभागीय शब्दावली के अनुमोदन/निर्माण/मानकीकरण/अद्यतनीकरण के लिए कृपया आयोग के अध्यक्ष के नाम शब्दसूची/पत्र भेजें।

9

पेशीय दुष्पोषपण

डॉ. जे. [illegible] अग्रवाल

मांसपेशियों की शक्ति कम करने वाला, जीन में असामान्यता से होने वाला गंभीर रोग पेशीय दुष्पोषण कहलाता है। इस रोग के मरीजों के शरीर के दोनों तरफ एक साथ मांसपेशियों की शक्ति कम होने लगती है जो धीरे-धीरे बढ़ती है, जिसके कारण मरीज अपाहिज, अपंग हो जाते हैं, अधिकांश की अल्प आयु में ही मौत हो जाती है। कभी-कभी पेशियां कमजोर होने के बावजूद इनका आकार बढ़ जाने से रोग के बारे में भ्रम हो सकता है। रोग कई कारणों के परिणाम स्वरूप हो सकता है।

पेशीय दुष्पोषण : यह सबसे सामान्य पेशीय दुष्पोषण होता है। रोग जीन में बदलाव आने के कारण होता है। रोग लड़कों में होता है पर महिलाएं रोगवाहक होती हैं। प्रति एक लाख आबादी में 13 से 33 व्यक्तियों को हो सकता है। रोग की शुरुआत बचपन से हो जाती है पेशियों की शक्ति धीरे-धीरे कम होने लगती है। अंत में मरीज अपाहिज हो जाते हैं। और 20-25 वर्ष की अल्प आयु में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

इस रोग में शुरू में पैरों, नितंब, कंधे की पेशियां प्रभावित होती हैं। पिंडलियों की पेशियों का आकर बढ़ जाता है। कमजोरी के कारण चाल में बदलाव आने लगता है। रोगी पंजे की सहायता से चलने का प्रयास करते हैं। इनकी रीढ़ की हड्डियां आगे झुक जाती हैं। सीढ़ी चढ़ने में दिक्कत होती है, कमजोरी के कारण गिरने से चोटें लगती रहती हैं। रोगग्रसित लेटी अवस्था से या बैठी अवस्था से खड़े होने के लिए नितंब की पेशियों के कमजोर होने के कारण हाथों से जाँघ का सहारा लेकर या आसपास मौजूद कुर्सी मेज, दीवार का सहारा लेकर ही खड़े हो पाते हैं।

रोग लड़कों में होता है, पर विकार-ग्रस्त जीन इनको मां से मिलता है। महिलाएं रोगवाहक होती हैं। अनुमान है कि करीब 1750 महिलाओं में एक महिला इस रोग की वाहक होती है। रोगवाहक महिलाओं की पेशियों में मामूली कमजोरी और पिंडलियों की पेशियां बड़ी हो सकती हैं।

छाती की पेशियों की कमजोरी के कारण ये श्वास पूरी तरह नहीं ले पाते, हृदय भी कमजोर होता है, प्रायः मरीजो की बौद्धिक क्षमता भी कम होती है।

बेकर दुष्पोषण : यह रोग का कम गंभीर स्वरूप है। यह पुरुषों में ही होता है। इसका प्रकोप प्रति एक लाख आबादी में 1 से 3 व्यक्ति में हो सकता है। लक्षणों की शुरुआत 5 से 15 वर्ष आयु में होती है और मरीज औसतन 40-80 वर्ष तक जीवित रहते हैं। इन मरीजों में जांघ, नितंब और कंधे की पेशियों में कमजोरी आती है।

आनन अंसलक प्रगंड दुष्पोषण (Facioscapulo humoral dystrophy): इस दशा में चेहरे, कंधों और बांहों की पेशियों में कमजोरी होती है। रोग की शुरुआत 20 से 30 वर्ष आयु के मध्य होती है। रोग, जीन में

बदलाव के कारण होता है। रोग पुरुषों, महिलाओं दोनों में एक जैसा होता है। इनके ओंठ लटक जाते हैं, चेहरा भाव शून्य हो जाता है। ये बांहों को कंधे से ऊपर उठा नहीं पाते।

शाखा मेखला दुष्पोषण (Limb girdle dystrophy): इस रोग में बाहों, नितंब की पेशियों में कमजोरी होती है। यह सूखने लगती है, कमर की हड्डी आगे मुड़ जाती है, पेट निकल आता है, कंधे बाहर झूलते है। चाप में बदलाव आ जाता हैं।

पेशी तानता दुष्पोषण (Dystrophia myotoria) यह रोग भी गुणसूत्रों में बदलाव के कारण महिलाओं, पुरुषों दोनों में किसी भी आयु में शुरू हो सकता है। मुख्यत: चेहरे की पेशियां शुरुआत में प्रभावित होती है। इनमें मोतियाबिंद हो सकता है, प्रजनन अंग भी सिकुड़ने लगता है। यह रोग गुणसूत्र न. 19 में बदलाव के कारण है।

रोग के कारण

ये रोग 'जीन' में परिवर्तन के कारण होते हैं। जीन में बदलाव के कारण पेशियों के एन्जाइम, जैव रसायनिक प्रक्रियाओं एवं संरचना में बदलाव आ जाते हैं। अधिकांश में यह रोग वंशानुगत होते है, मुख्यत: यदि माँ रोग वाहक है तो उनकी संतानें (मुख्य रूप से लड़के) रोग ग्रस्त हो सकती है। करीब 30% में गर्भावस्था के दौरान विभिन्न कारणों से जीन में बदलाव के कारण ये रोग होते हैं। ये सभी गंभीर रोग हैं जिनके कारण मरीज की क्षमता कम होने लगती हैं, ये अपाहिज हो जाते हैं। रोग के कारण श्वसन-तंत्र, हृदय की पेशियाँ भी प्रभावित हो सकती है। अचानक श्वास रुकने, हृदय-रोग, या गंभीर संक्रमण के कारण मौत हो सकती है।

रोग का निदान

रोग का शंका होने पर रक्त में क्रिएटिनिन काइनेज स्तर मापने पर इसका स्तर इन मरीजों में बढ़ा मिलता है। रोग की पुष्टि मांस-पेशियों की विद्युत् तरंगों की जांच, ई.एम.जी. और पेशियों के टुकड़े को निकाल कर इनमें बायोप्सी से हो सकती है। रोग कारक जीव का पता लगाने के लिए रक्त की श्वेत कणिकाओं में जीन की जांच की जानी चाहिए।

समाधान

'जीन' गुणसूत्रों की असमान्यताओं के कारण होने वाले रोगों का अभी उपचार सर्वसुलभ नहीं है। वैज्ञानिक इन रोगों के उपचार के लिए 'जीन' चिकित्सा-विधियों (जीन थिरैपी) का विकास कर रहे हैं, जिससे असामान्य जीन के स्थान पर सामान्य जीन वाहक के द्वारा मरीज के शरीर में पहुंचाया जा सके और यह स्वस्थ जीन परिवर्तित जीन कां स्थान लेकर उनका कार्य कर सके और मरीज स्वस्थ हो जाए। इसके अतिरिक्त मूल कोशिका (स्टेम सेल) से क्षत हुए ऊतक की 'स्टेम सेल' लाइन के द्वारा भी आनुवंशिक उपचार की संभावना भविष्य में है।

जब तक जीन चिकित्सा का विकास नहीं हो जाता, और वह सर्व सुलभ नहीं हो जाती तब तक इन मरीजों के लक्षणों, समस्याओं के अनुसार उनकी सहायता की जाती है जिससे यथासंभव वे चल फिर सकें, कार्य कर सकें, अपाहिज, लाचार, पराश्रित न हों और उनकी मौत न हो।

प्रयास होना चाहिए कि मरीज यथा संभव सक्रिय रहें और पेशियों का यथा सामर्थ्य उपयोग करते रहें। इनको मांसपेशियों के हल्के व्यायाम करने चाहिए, गहरी सांस लेनी चाहिए। अपांगता, विकृतियों का उपचार उपकरणों, ऑपरेशन द्वारा किया जा सकता है।

मरीज में सांस फूलने, चक्कर आने, पेशाब बार-बार आने, मल न होने, रीढ़ की हड्डी टेढ़ी होने इत्यादि लक्षण गंभीर स्थिति के सूचक हैं, इनका तुरंत उपचार होना चाहिए।

मरीज को पर्याप्त मात्रा में संतुलित भोजन और जल का सेवन करना चाहिए। भोजन में रेशों की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए जिससे वे कब्ज-ग्रसित न हो। इन मरीजों को क्षमता से ज्यादा कार्य, व्यायाम नहीं करना चाहिए। अत्यधिक थकान होने या ज्यादा श्रम करने से पेशियों के क्षति ग्रस्त होने की गति तेज हो सकती है।

परिवार को सलाह

दुष्पोषण ज्यादातर में वंशानुगत रोग है जो कि जीन में असामान्यताओं के कारण होता है। यदि मां रोगवाहक है तो इन परिवार के लड़कों के रोग-ग्रस्त होने और लड़कियों के रोग-वाहक होने की संभावना होती है। अब रोग-वाहक मां के गर्भस्थ शिशु में जीन की जांच से शिशु में रोग की संभावना का पता लगाया जा सकता है। यदि इन जांचों से गर्भस्थ शिशु में रोग के होने का पता चलता है तो दंपति गर्भपात करवा कर रोगी बच्चे को जन्म देने और उसके लालन-पालन में होने वाली दिक्कतों से तथा बच्चे के कष्टप्रद दयनीय जीवन व्यतीत करने से बच्चे का बचाव कर सकते हैं। गर्भापात करवाने से चिंता, अपरोध-बोध से भी बचाव होता है। जीन जांच की सुविधा उपलब्ध होने से पहले रोगवाहक मां-पिता को संतान की इच्छा त्यागने की सलाह दी जाती थी जिससे रोगी बच्चे का जन्म न हो पाए।

पेशी-दुष्पोषणग्रस्त मरीजों और परिवार को सलाह सहायता देने के लिए अन्य देशों सदृश समाज सेवी संस्थाए हमारे देश में भी डिस्ट्रॉफी सोसाइटी ऑफ इडिंया है। परिवार इनसे रोग की विस्तृत जानकारी सलाह और सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इनकी वेबसाइट http://www.mdausa.org पर रोग के संबंध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है।

दिल्ली के ए.आई.आई.एम.एस हॉस्पिटल में इस संस्था की प्रधान का (जो स्वंय डिस्ट्रॉफी ग्रस्त थी) उपचार मूल कोशिका द्वारा हुआ जिससे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। आशा है यह उपचार सर्वसुलभ हो जाएगा और डिस्ट्रॉफी के मरीज स्वस्थ होकर सामान्य और लंबा जीवन व्यतीत कर सकेंगे

❑

शब्दावली क्लबों की स्थापना

हिंदी की वैज्ञानिक शब्दावली के प्रचार-प्रसार एवं उसके प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए आयोग विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों शिक्षा संस्थानों, शोध संस्थानों आदि में शब्दावली क्लबों की स्थापना करता है ताकि वहां सभी विषयों की समस्त अद्यतन शब्दावली अध्ययन, शिक्षण व लेखन आदि के लिए उपलब्ध रहे। फिलहाल उड़ीसा राज्य पाठ्य पुस्तक निर्माण व्यूरो, भुवनेश्वर, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, विज्ञान परिषद्, प्रयाग और प्रकाशन विभाग, मैसूर विश्व विद्यालय, मैसूर में शब्दावली क्लब स्थापित है। इस योजना के अंतर्गत शब्दावली क्लब खोलने की इच्छुक संस्था को शब्दावली आयोग तथा उसके अंतर्गत उसके सहयोग से काम करने वाले सभी बोर्डो/अकादिमयों का साहित्य उपलब्ध कराया जाता है। क्लब के लिए कमरे/फर्नीचर आदि की व्यवस्था संस्था को स्वयं करनी होती है। अधिक जानकारी के लिए कृपया आयोग के अध्यक्ष को लिखो।

10

तारों की दूरी का मापन

–डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

रेडार के आविष्कार से वैज्ञानिकों को पृथ्वी के निकट स्थित कृत्रिम तथा प्राकृतिक पिंडों की दूरी मापने की एक विधि हाथ लग गई। इस विधि द्वारा चांद की दूरी भी सही-सही माप ली गई। इसके लिए रेडार किरणों को चांद पर भेज कर और उसकी सतह से टकराकर पुन: पृथ्वी पर लौट कर वापस आने का समय अंकित किया गया। चूंकि रेडियो तरंगें प्रकाश तरंगों के वेग (लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड) से भ्रमण करती हैं अत: रेडियो संकेतों को चांद तक जाकर वापस लौटने में लिए गए समय को उसके वेग से गुणा कर चांद की दूरी मालूम कर ली गई। तारों की दूरी मापने के लिए भी इस विधि को उपयोग में लाने का प्रयास किया गया, परंतु इसमें सफलता नहीं मिली। तारों की दूरी को इस प्रकार मापना संभव नहीं है क्योंकि चांद की अपेक्षा तारे पृथ्वी से बहुत अधिक दूर हैं। कोई भी रेडार-किरण इतनी शक्तिशाली नहीं है कि वह किसी तारे पर जाकर इस प्रकार परावर्तित होकर लौटे कि उसे अच्छी तरह मापा जा सके। यह प्रयास कुछ उसी प्रकार का होगा जैसे कोई व्यक्ति दिल्ली से आवाज लगाए तथा आशा करे कि हिमालय पहाड़ से टकराने के बाद उसकी आवाज की प्रतिध्वनि वापस आकर दिल्ली में सुनाई पड़े।

तारों की दूरी को मापने के लिए वैज्ञानिक लोग लंबन (पैरालैक्स) विधि का उपयोग करते हैं। रेडार के आविष्कार के पूर्व चाँद की दूरी भी वैज्ञानिकों ने इसी विधि द्वारा मालूम की थी। इस विधि में पर्यवेक्षक के स्थान-परिवर्तन के अनुसार चाँद के प्रत्यक्ष विस्थापन को अंकित किया जाता है जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है। कोई भी पर्यवेक्षक पृथ्वी पर स्थित 'अ' तथा 'आ' दो भिन्न बिंदुओं से अपने उदग्र (जेनिथ) तथा चाँद के बीच बनने वाले कोण 'उ' तथा 'ऊ' को माप कर कोण 'क' तथा 'ख' को मालूम करता है। दूरी 'अ' 'आ' तथा कोण 'क' एवं 'ख' को जान कर पृथ्वी से चाँद की दूरी 'प' 'म' को सरल त्रिकोणमितीय गणना द्वारा मालूम किया जा सकता है।

तारों की दूरी को मापने के लिए पृथ्वी की सतह पर दो बिंदु न लेकर सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के परिक्रमापथ पर स्थित दो विपरीत ध्रुवों को दो बिंदुओं के रूप में चुना जाता है। फिर इन दो बिंदुओं से उस तारे का लंबन कोण मापा जाता है (चित्र 2)। इसके लिए ठीक छह महीने के अंतराल पर उस तारे का विस्थापन अंकित किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि किसी तारे का पहला लंबन कोण 21 जून को मापा जाता है तो दूसरा लंबन कोण उसी वर्ष 21 दिसंबर को मापा जाना चाहिए। इस प्रकार कोई भी पर्यवेक्षक किसी तारे का पर्यवेक्षण 30 करोड़ किलोमीटर (पृथ्वी के परिक्रमा-पथ का व्यास) की दूरी पर स्थित दो बिंदुओं से करता है न कि सिर्फ 12 हजार किलोमीटर (पृथ्वी का व्यास) की दूरी से इतनी अधिक दूरी पर स्थित दो भिन्न बिंदुओं से पर्यवेक्षण करने पर भी तारे के लंबन कोण के माप में अशुद्धि की संभावना रहती है। इसकी वजह यह है कि तारे हम से काफी दूरी पर स्थित हैं। सबसे निकटस्थ तारे के लंबन कोण का मान सिर्फ 0.00021 डिग्री है। हमारा निकटम पड़ोसी प्रॉक्सिमा सेंटॉरी नामक तारा है जिसकी दूरी लगभग चार नील (4×10^{13}) किलोमीटर आंकी गई है।

तारे हमसे इतनी दूर हैं कि उनकी दूरी का मान मील या किलोमीटर में व्यक्त करना सुविधाजनक नहीं है। अत: तारों की दूरी को व्यक्त करने हेतु दूरी की एक बड़ी इकाई का व्यवहार किया जाता है, जिसे प्रकाश-वर्ष कहते हैं। एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूरी तय करता है उसे एक प्रकाश-वर्ष कहते हैं। चूंकि प्रकाश का वेग तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड है, अत: एक प्रकाश वर्ष का मान $365\times24\times3600\times3$ लाख किलोमीटर हुआ। हमारे निकटतम पड़ोसी प्रॉक्सिमा सेंटॉरी की दूरी लगभग 4.3 प्रकाश-वर्ष है।

अधिकांश तारे हमसे इतनी अधिक दूरी पर स्थित है कि उनका लंबन कोण नगण्य होता है जिसे बहुत बड़ी-बड़ी दूरबीनों द्वारा भी मापना टेढ़ी खीर है। हालांकि अब तक लगभग छह हजार तारों की दूरी लंबन विधि से मापी गई है, परंतु अनुभवों से पता चलता है कि तीन सौ प्रकाश वर्ष से अधिक दूरी पर स्थित तारों की दूरी को इस विधि से मापना असंभव है। अत: ऐसे तारों के लिए एक अन्य विधि अपनाई जाती है। यह विधि है तारों का विस्थापन-संबंधी अध्ययन।

इंग्लैंड का खगोलविद् एडमंड हेली संसार का पहला व्यक्ति था जिसने यह बताया कि तारे आकाश में विस्थापित होते रहते हैं। उसने सन् 150 ई. में टॉलेमी द्वारा सूचीबद्ध किए गए तारों के स्थानों की तुलना अपने समय के दौरान उनकी आकाशीय स्थिति से की। उसने पाया कि आर्कट्यूरस नामक तारा अपने प्राचीन स्थान से एक डिग्री विस्थापित हो कर अन्य तारों के बीच भी पाया गया। सबसे अधिक विस्थापन बर्नार्ड स्टार में पाया गया है जो एक धुंधला लाल रंग का तारा है। अध्ययनों से पता चला है कि बर्नार्ड तारा प्रत्येक 180 वर्ष के दौरान आधा डिग्री विस्थापित हो जाता है।

उपर्युक्त कोणीय विस्थापन के आधार पर किसी तारे का सरल रैखिक वेग भी बताया जा सकता है, बशर्ते कि उसकी दूरी मालूम हो। इसे दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि यदि किसी तारे का कोणीय विस्थापन तथा रैखिक वेग मालूम हो तो उसकी दूरी की गणना की जा सकती है। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि तारे आकाश में एक ओर से दूसरी ओर विस्थापित होने के अलावा या तो पृथ्वी से दूर भागते जाते हैं या पृथ्वी के निकट आते जा रहे हैं। अब प्रश्न उठता है कि हमें कैसे पता चलेगा कि कौन सा तारा पृथ्वी के निकट आ रहा है तथा कौन सा पृथ्वी से दूर हट रहा है। किसी हवाई जहाज को देख कर हम आसानी से बता सकते है कि वह हमारे निकट आ रहा है या हमसे दूर जा रहा है, क्योंकि हवाई जहाज निकट आने पर धीरे-धीरे बड़ा दिखाई पड़ेगा जबकि दूर जाने पर वह धीरे-धीरे छोटा होता जाएगा। परंतु तारे हमसे इतनी दूर है कि उनके निकट या दूर जाने पर स्पष्ट रूप से बड़े या छोटे होते दिखाई देने के लिए हमें हजारों वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

परंतु उपर्युक्त तथ्य का पता लगाने के लिए भी वैज्ञानिकों ने एक विधि ढूंढ़ निकाली है। दैनिक जीवन में हम प्राय: देखते हैं कि जब कोई रेलगाड़ी हमारे निकट आती है तो उसकी सीटी की आवाज धीरे-धीरे तेज होती जाती है। इसके विपरीत जब गाड़ी हमसे दूर भागती है तो उसकी सीटी की आवाज धीरे-धीरे धीमी

होती जाती है। ध्वनि के समान ही प्रकाश तरंगें भी अपने स्रोत के विस्थापन से प्रभावित होती हैं अर्थात् जब कोई रेलगाड़ी हमारे निकट आती है तो उसका प्रकाश धीरे-धीरे तेज होता दिखाई देता है। इसके विपरीत जब गाड़ी हमसे दूर भागती है तो उसका प्रकाश धीरे-धीरे धुंधला होता दिखाई पड़ेगा। इसके विपरीत जो तारे हमसे दूर हटते जाएंगे उनका प्रकाश धीरे-धीरे लाल होता दिखाई पड़ेगा। इन प्रभावों को हम नंगी आंखों से नहीं देख सकते परंतु वैज्ञानिकों ने प्रकाश के वर्णपट का विश्लेषण कर इस तथ्य का पता लगाने की विधि ढूंढ निकाली है। इससे सिर्फ इतना ही नहीं पता लगता कि तारे हमारे निकट आ रहे हैं या हमसे दूर भागते जा रहे हैं। अपितु यह भी पता लगता है कि तारे किस वेग से चल रहे हैं। साथ ही इससे इनकी दूरी का भी अनुमान लग जाता है।

सन् 1920 के दशक में प्रसिद्ध खगोलविद् डॉ. एडविन पी. हबल ने उस समय की सबसे बड़ी दूरबीन 'माउंट विल्सन' की सहायता से अनेक तारों तथा नीहारिकाओं का पर्यवेक्षण किया तथा उनसे संबंधित दूरी तथा अभिरक्त विस्थापन (रेड शिफट) के आंकड़ों का संकलन किया। जब उसने तारों की दूरी को अभिरक्त विस्थापन के सापेक्ष ग्राफ पर अंकित किया तो पाया कि दोनों के बीच एक गणितीय संबंध है। इस प्रकार तारों की दूरी ज्ञात करने हेतु अभिरक्त विस्थापन एक विश्वसनीय आधार बन गया।

❑

दलहन फसलों की छह नई किस्मों की पहचान

देश के विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने दलहनी फसलों की छह नई किस्मों की पहचान की है। इन नई व उन्नत किस्मों में तीन चने की हैं, जिनमें दो देसी व एक काबुली चने की है।

11

वस्त्र-तंतुओं का परीक्षण

—श्याम सुंदर बैरवा

प्रस्तुत लेख में वस्त्र तंतुओं के परीक्षण की विभिन्न विधियां दी गई हैं। इन विधियों द्वारा वस्त्र तंतुओं का सही-सही परीक्षण कर उन्हें यथा स्थान प्रयोग में ला सकते हैं। इनके परीक्षण की दो विधियां, सूक्ष्मदर्शी द्वारा परीक्षण तथा रसायन परीक्षण ही सर्वाधिक विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण विधियां हैं।

मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं में भोजन के पश्चात् वस्त्र का ही स्थान आता है। वस्त्र-तंतु न केवल वस्त्र बनाने के काम आते हैं, बल्कि विद्युत् केबल, टायर कॉर्ड, चिकित्सा-क्षेत्र, जिओ-टेक्सटाइल, संवाहक पट्टा, छन्ना कागज, रक्षा उपकरण, औद्योगिक क्षेत्र, अंतरिक्ष क्षेत्र और ऑटोमोबाइल उद्योग में भी बहुतायत से काम आ रहे हैं।

वस्त्र-तंतु मुख्यत: दो प्रकार के होते है

अ) प्राकृतिक वस्त्र-तंतु, तथा

ब) मानव-निर्मित वस्त्र-तंतु

वस्त्र-तंतुओं का व्यापक उपयोग है। अत: यह आवश्यक है कि सही स्थान पर सही वस्त्र-तंतुओं का उपयोग किया जाए। उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए वस्त्र-तंतुओं का परीक्षण अति आवश्यक है। वस्त्र-तंतुओं के परीक्षा की मुख्यत: दो विधियां प्रचलन में हैं:

(क) गैर-तकनीकी परीक्षण : इन परीक्षणों में किसी उपकरण अथवा रसायन का प्रयोग नहीं किया जाता। इसी कारण इन्हें गैर तकनीकी परीक्षण कहा जाता है। गैर-तकनीकी परीक्षण चार हैं:

1) दृश्य परीक्षण 2) स्पर्श परीक्षण

3) विच्छेद परीक्षण, एवं 4) दहन परीक्षण

(ख) तकनीकी परीक्षण : इन परीक्षणों में विशेष रसायन एवं उपकरण उपयोग किए जाते हैं। ये परीक्षण निम्न चार प्रकार के होते है

1. घनत्व परीक्षण 2. अभिरंजन परीक्षण

3. सूक्ष्मदर्शी परीक्षण 4. रासायनिक परीक्षण

इस प्रकार वस्त्र-तंतुओं के परीक्षण से यह ज्ञात किया जाता है कि कौन-कौन से तंतु वस्त्र में उपस्थित हैं। अब हम उपरोक्त परीक्षणों की विधियों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

(क) गैर-तकनीकी परीक्षण

1. **दृश्य परीक्षण** : दृश्य परीक्षण में वस्त्र से एक धागा लिया जाता है और उसकी ऐंठन निकाली जाती है। इसके पश्चात् प्रेक्षण लिए जाते हैं। प्रेक्षणों में तंतु की लंबाई, उसकी द्युति (चमक) व उसके सातंत्य विशेष रूप से देखे जाते हैं।

यदि तंतुओं की लंबाई में बहुत अधिक अंतर हो तो तंतु ऊन, सूत, लिनन, जूट इत्यादि के हो सकते हैं।

यदि तंतुओं की लंबाई (staple length) में अधिक अंतर न हो उनमें एकरूपता हो तो तंतु रेशम, कोई भी मानव-निर्मित तंतु अथवा संश्लेषित रेशे हो सकते हैं। यदि 8 सेन्टीमीटर से कम लंबाई के रेशे हो तो ये सूती हो सकते हैं। मानव-निर्मित रेशे तथा रेशम के रेशे अन्य प्राकृतिक रेशों से अधिक चमकदार होते हैं।

यह परीक्षण विश्वसनीय नहीं होता है क्योंकि कई मानव-निर्मित तंतुओं की लंबाई एकसार होती है और उनकी चमक भी एक सी होती है।

2. **स्पर्श परीक्षण :** यह परीक्षण तंतुओं अथवा वस्त्रों को स्पर्श कर अथवा छूकर परीक्षण करने के सिद्धांत पर आधारित है।

इस परीक्षण में सर्वप्रथम कपड़े को अंगुलियों द्वारा स्पर्श किया जाता है तथा इसकी विन्सायिता कड़ापन, पात (fall), शिकन न पड़ने की प्रवृत्ति आदि देखे जाते हैं। चूंकि ऊन, ऊष्मा की कुचालक होती है, अत: स्पर्श करने पर यह हमें गर्म मालूम होती है। वानस्पतिक तंतु जैसे सूती रेशे, लिनन, और यहां तक कि रेयॉन भी ऊष्मा के सुचालक होते हैं। अत: जब इनको स्पर्श किया जाता है तो ये ठंडे प्रतीत होते हैं।

विभिन्न तंतुओं का स्पर्श परीक्षण नीचे दिया गया है :

(i) सूत : स्पर्श करने पर ठंडा, नर्म और अप्रत्यास्थ प्रतीत होता है।

(ii) लिनन : स्पर्श करने पर ठंडा, नर्म और चर्मिल प्रतीत होता है।

(iii) जूट : स्पर्श करने पर ठंडा, रूक्ष तथा चर्मिल प्रतीत होता है।

(iv) रेशम : यह स्पर्श करने पर गर्म, प्रत्यास्थ और चिकना प्रतीत होता है।

(v) ऊन : यह स्पर्श करने पर गर्म, प्रत्यास्थ तथा तन्य प्रतीत होता है।

(vi) रेयॉन : स्पर्श करने पर ठंडा, चिकना, अप्रत्यास्थ तथा द्युतिमय प्रतीत होता है।

(vii) ऐसीटेट : स्पर्श करने पर थोड़ा गर्म, रेशम की अपेक्षा अधिक चिकना, प्रत्यास्थ तथा प्रतिस्कंदीय प्रतीत होता है।

(viii) नायलॉन : स्पर्श करने पर यह बहुत अधिक चिकना, हल्का, प्रत्यास्थ तथा द्युतिमय होता है।

(ix) पॉलिएस्टर : यह बहुत चिकना लेकिन कड़ापन लिए होता है।

(x) ऐक्रिलिक : भेड़ की ऊन की तरह प्रतीत होता है, परंतु इसका भार कम होता है तथा यह सर्पणशील होता है।

(xi) पॉलिप्रोलीन: बहुत ही हल्का, प्रतिस्कंदीय, चिकना तथा द्युतिमय प्रतीत होता है।

स्पर्श परीक्षण में कभी-कभी हम पाते हैं कि कई तंतुओं के प्रेक्षण एक-जैसे हैं, अत: उनमें भ्रम होना स्वाभाविक है। अत: यह परीक्षण अधिक विश्वसनीय नहीं है।

3. **विच्छेद परीक्षण :** अलग-अलग तंतुओं को तोड़ा जाए तो उनके टूटे हुए सिरों से उनके बारे में महत्वूपर्ण जानकारी मिलती है।

इस परीक्षण में लगभग 30 सेमी. लंबा धागा लेकर उसे दोनों हाथों के बीच पकड़कर तोड़ा जाता है। यद्यपि इस परीक्षण से यह तो पता नहीं चलता है कि किस धागे को तोड़ने में कितना अधिक बल लगा फिर भी धागों के टूटे हुए सिरे हमें निम्न जानकारी देते हैं:

(i) सूत : सूत के टूटे हुए धागों के सिरे बहुत ही छोटे, रोएंदार तथा ब्रुश की तरह होते हैं। टूटे हुए धागे के सिरों में एक विशेष कर्ल होता है। यह कर्ल तंतु की प्राकृतिक ऐंठन के कारण होता है।

(ii) लिनन : लिनन के धागे के टूटे हुए सिरे लंबे, सीधे व द्युतिमय होते हैं जो नोकदार और असमान होते हैं। इस तंतु के सिरे कभी भी कर्ल नहीं बनाते।

(iii) ऊन : ऊन का धागा तोड़ने के लिए जब हल्के से खींचा जाता है तो टूटने से पहले यह आसानी से खिंचता जाता है। इसका कारण यह है कि इसकी प्रत्यास्थता अच्छी होती है। धागे के टूटने पर इसके सिरे लहरदार तथा तन्य दिखते हैं।

(iv) रेशम : रेशम के धागे को जब खींचते है तो यह आसानी से खिंच जाता है क्योंकि यह प्रत्यास्थता की दृष्टि से ऊन के काफी निकट है। धागे के सिरे जब टूटते हैं तो वे सूक्ष्म तथा द्युतिमय प्रतीत होते हैं।

(v) विस्कॉस रेयॉन : शुष्कावस्था में विस्कॉस रेयॉन आसानी से नहीं टूटता। लेकिन यह जब गीला होता है तब एक हल्का-सा खिंचाव इसे आसानी से तोड़ सकता है। जब यह टूटता है तंतु के अंतिम सिरे एक प्रतिरूप बनाते हैं जो अनेक शाखाओं वाले एक पेड़ की भांति दिखता है। विच्छेदन विधि सामान्य परीक्षण के लिए तो ठीक है परंतु इसके द्वारा तंतुओं का निश्चयात्मक परीक्षण नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अधिकांश मानव-निर्मित एवं संश्लेषित रेशों के टूटने का प्रतिरूप एक-सा ही होता है, जिसके कारण भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

4. **दहन या ज्वलन परीक्षण :** प्रत्येक वस्त्र-तंतु का अपना एक विशेष रासायनिक संघटन होता है। इसे जब जलाया जाता है तो विशेष प्रकार की गंध निकलती है, जलने की खास प्रक्रिया होती है और भिन्न अवशेष देखे जाते हैं और इसी आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि तंतु किस समूह का हो सकता है। इस परीक्षण द्वारा तंतुओं की कुछ सीमा तक ही सही जानकारी मिल पाती है। वस्तुत: इस परीक्षण द्वारा यह पता लगाया जाता है कि तंतु सेलुलोसी, प्रोटीन, अथवा मानव-निर्मित इन तीनों समूहों में से किस समूह को प्रदर्शित करता है। इसका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

(1) सेलुलोसी समूह : इस समूह में सूत, विस्कॉस रेयॉन, जूट, लिनन, नारियल तंतु इत्यादि आते हैं। जब इन तंतुओं को जलाया जाता है तो ये तुरत आग पकड़ लेते हैं। इनमें से पीली ज्वाला निकलती है। इनकी गंध जलते हुए कागज की गंध के समान होती है तथा ये जलने के पश्चात् थोड़ी सी राख छोड़ते हैं।

(2) प्रोटीन समूह : इस समूह में वे सभी तंतु आते हैं जो जीव-जंतुओं से प्राप्त होते हैं अथवा प्रोटीन के संश्लेषण से बनाए जाते हैं। इस समूह में ऊन, रेशम, केसीन, तथा जानवरों के बाल, जैसे खरगोश, ऊंट, बकरी के बाल आदि शमिल हैं। ऊनी तंतु जलाए जाने पर धीरे-धीरे जलते हैं, जलते समय इनमें से चड़-चड़ की आवाज आती है। यदि ज्वाला को इनसे दूर ले जाया जाए तो इनका जलना बंद हो जाता है। ये पीत-नारंगी ज्वाला के साथ जलते हैं जो कि तली में नीले-बैंगनी रंग की किनारी लिए होती हैं। इनका मनका गहरे रंग का तथा भुरभुरा होता है। इसे सरलता से पीसा जा सकता है। जलाए जाने पर इसमें से आदमी के बाल अथवा मांस के जलने की गंध आती है।

रेशम के तंतु धीरे-धीरे चड़-चड़ की आवाज के साथ जलते हैं। इनके जलने पर ज्वाला का रंग पीत-नारंगी होता है तथा नीले-धूसर रंग का धुंआ निकलता है। ज्वाला स्फुलिंग के साथ जलती है, जलते समय तंतु फूल जाते हैं तथा काले हो जाते

हैं। इनके जलने की गंध भी मानव के बाल के जलने की गंध-जैसी ही होती है।

केसीन तंतु ज्वाला के संपर्क में आते ही फूल जाते हैं; जलने पर एक दम काले पड़ जाते हैं। इनका धुंआ पीला-धूसर होता है। इनके जलने की गंध दूध के जलने की गंध-जैसी होती है।

3) मानव-निर्मित एवं संश्लेषित तंतु

(i) ऐसीटेट रेयॉन: पीले, मॉव या नीले रंग की ज्वाला के साथ संगलित होते हैं। ये पिघल कर कठोर आकार ले लेते हैं। इनकी राख कठोर होती है और उसे सरलतापूर्वक पीसा नहीं जा सकता। जलने पर सिरके-जैसी गंध आती है।

(ii) नायलॉन : इनके तंतुओं को जब ज्वाला के पास लाया जाता है तो वे सिकुड़ने लगते हैं और संगलित होने लगते हैं। जलाने पर धीरे-धीरे जलते हैं। इनकी ज्वाला का रंग पीला, नारंगी या नीलापन लिए होता है। ये तंतु पिघलकर गोलाकार आकृति बनाते हैं। इसके जलने पर ताजी सब्जियों के जलने-जैसी गंध आती है। अत: भंगुर, कठोर काला मनका बनता है।

(iii) पॉलिएस्टर : इसके तंतु जब ज्वाला के संपर्क में आते हैं तो पहले वे मुलायम पड़ जाते है और फिर पीले-नारंगी रंग के साथ पिघल जाते हैं और काला धुंआ निकलता है। साथ ही मीठी ऐरोमैटिक गंध भी आती है। अंत में अनियमित कठोर मनका बनता है।

(iv) ऐक्रिलिक : इसके तंतुओं को जब ज्वाला के पास लाया जाता है तो वे संगलित होते हैं और पिघल कर तेजी से जलते हैं। तीखी कड़वी गंध आती है। अंत में कठोर, काला व भंगुर मनका बनता है।

(v) ग्लॉस तंतु यह जलता नहीं है। जब इसे प्रज्वलित करते हैं तो न के बराबर या पीली सोडियम ज्वाला निकलती है।

(vii) टेफ्लॉन : यह पिघल कर झुलस जाता है, परंतु प्रज्वलित नहीं होता।

(viii) ऐस्बेस्टॉस : यह जलता नही हैं।

तकनीकी परीक्षण

1. घनत्व परीक्षण : इस परीक्षण का आधार यह है कि जो तंतु जितना अधिक हल्का होगा, वह एक विशेष प्रकार के घोल में उतना ही ऊपर होगा, जबकि जो तंतु जितना भारी होगा वह उतना ही नीचे तैरेगा।

इस परीक्षण में बेन्जीन, कार्बन टेट्राक्लोराइड, ईथर, जाइलोल इत्यादि उपयोग किए जाते हैं। सबसे पहले ऐसे दो अक्रिय कार्बनिक रसायन चुने जाते हैं जिनमें से एक का घनत्व न्यूनतम तथा दूसरे का अधिकतम होता हो। इनको ऊर्ध्वाधर स्थिति में रखी प्रवणता नलिका में भर कर स्थिर छोड़ दिया जाता है। विसरण के कारण लगभग दो दिन में दोनों रसायन आपस में मिश्रित हो जाते है। इस नलिका का अंशांकन इसमें ज्ञात घनत्व के तंतु डाल कर लिया जाता है। जब इस नलिका में अज्ञात घनत्व के तंतु को डाला जाता है, तब वह किसी न किसी घनत्व पर ठहरेगा। जिस घनत्व पर तंतु ठहरता है वही घनत्व उस तंतु का घनत्व होगा। कुछ तंतुओं का घनत्व यहां दिया गया है:

तंतु	घनत्व	तंतु	घनत्व
सूत (कपास)	1.54	ऊन	1.31
विस्कॉस रेयान	1.52	ऐक्रिलिक	1.17
पॉलिएस्टर	1.38	मॉड ऐक्रिलिक	1.25
कच्चा रेशम	1.33	नायलॉन	1.14
गोंद रहित रेशम	1.25	पॉलिप्रोपिलीन	0.91

इस विधि की कमजोरी यह है कि समान घनत्व वाले तंतुओं का परीक्षण ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।

2. अभिरंजन (Staining) परीक्षण : इस परीक्षण का मुख्य आधार यह है कि जब अलग-अलग प्रकार के तंतु एक निश्चित रंजक के घोल में उपचारित किए जाते हैं तो वे अपना विशिष्ट रंग देते हैं। यही रंग उनकी पहचान बताता है।

यह परीक्षण करने से पहले आवश्यक है कि प्रतिदर्श (तंतुओं) से हर प्रकार की अशुद्धि (मांडी, प्राकृतिक रंग, मोम, वसा आदि) हटा जाए।

यह परीक्षण जिंक क्लोरो आयोडाइड, आयोडीन, पोटेशियम आयोडाइड, आयोडीन-ग्लिसरीन-सल्फ्यूरिक एसिड एवं शर्लेस्टेन अभिकर्मक द्वारा किया जाता है। उक्त सभी परीक्षणों में शर्लेस्टेन परीक्षण अधिक विश्वसनीय परिणाम देता है।

(i) सेलुलोसी तंतु

शर्लेस्टेन 'A' के साथ रंग
अभिमार्जित सूत (scoured cotton) — लाइलक (हल्का बैंगनी)
विरंजित सूत (bleached cotton) — बैंगनी-नीला
मर्सरीकृत सूत (mercerised cotton) — पर्पल
विस्कॉस रेयॉन — चमकीला गुलाबी
क्यूप्रैमोनियम रेयॉन — चमकीला नीला

(ii) अन्य तंतुओं के साथ विभिन्न अभिकर्मकों के रंग

तंतु	शर्लेस्टेन A	शर्लेस्टेन E	शर्लेस्टैन D
सूत (कच्चा)	हल्का पर्पल	–	नीला
लिनन	भूरा-पर्पल	–	–
विस्कॉस रेयॉन	गुलाबी या लैवेन्डर	पर्पल-भूरा	हरा
पॉलिनोसिक	गुलाबी	हल्का गुलाबी	–
द्वितीयक ऐसीटेट	हरापन लिए पीला	नारंगी	–
कोरा रेशम	गहरा भूरा	गहरा भूरा	–
ऊन	पीला	गहरा हरा	–
नायलॉन	पीला	हल्का भूरासे सुनहरी पीला	–
पॉलिएस्टर	बहुत पीला पर्पल	क्रीम	–
पॉलिऐक्रिलोनाइट्राइल	बिना रंग का खाकी	लाल, हरा, या फीका पीला	–

शर्लेस्टेन (A, E और D) विशेष प्रकार के अभिरंजक है जो लॉसन तथा हेम्पहिल कंपनी द्वारा बनाए जाते हैं और तंतुओं के परीक्षण में काम आते हैं। इनकी सहायता से तंतुओं का परीक्षण निम्न प्रकार से कर सकते है:

उपरोक्त परीक्षणों में तंतु को एक मिनट तक शर्लेस्टेन के घोल में रखते है, तत्पश्चात् रंग देखते हैं।

3. सूक्ष्मदर्शी परीक्षण

अब तक के सभी परीक्षणों द्वारा यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि दिया गया तंतु वही है, जो कि हमारे परिणाम बताते हैं। सूक्ष्मदर्शी परीक्षण इस दिशा में बहुत विश्वसनीय परीक्षण है। इस परीक्षण में तंतु का (चाहे वह कपड़े से लिया जाए, धागे से लिया जाए, चाहे मुक्त रूप से तंतु ही हो) परीक्षण सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा किया जाता है। प्रकृति की रचना ऐसी है कि लगभग सभी तंतुओं का, चाहे वे प्राकृतिक हों, संश्लेषित

हों या फिर मानव-निर्मित हों उनके अनुदैर्घ्य परिच्छेद तथा अनुप्रस्थ परिच्छेद अलग-अलग होते हैं और यही इस परीक्षण का आधार है।

इस परीक्षण में वस्त्र-तंतुओं को एक दूसरे के लगभग समांतर रखते हुए उनकी स्लाइड बनाते हैं। स्लाइड बनाने में ग्लिसरीन का उपयोग किया जाता है। स्लाइड इस तरह से बनाई जाती है कि वस्त्र-तंतु इससे बाहर न निकले एवं न ही इसमें बुलबुले प्रवेश कर पाएं। एकल तंतुओं में पांच-सात तंतु पर्याप्त रहते हैं जबकि सम्मिश्रों (ब्लेन्ड) के मामले में अच्छी तरह मिले हुए आठ-बारह तंतु पर्याप्त होते हैं। अब स्लाइड को सूक्ष्मदर्शी पर लगाया जाता है।

स्लाइड को ध्यान से देखना चाहिए और तंतुओं का परीक्षण सावधानी पूर्वक करना चाहिए। सामान्यत: सभी तंतुओं के अनुप्रस्थ परिच्छेद एवं अनुदैर्घ्य परिच्छेद अलग-अलग होते हैं, परंतु संश्लेषित रेशों तथा मानव-निर्मित रेशों में कभी-कभी भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सूक्ष्मदर्शी द्वारा तंतुओं के परीक्षण को निम्नलिखत प्रकार से दर्शाया जा सकता है:

इस प्रकार प्रमुख तंतुओं के सूक्ष्मदर्शी दृश्यों का वर्णन कर सकते हैं। इससे अधिकतर तंतुओं की सही जानकारी हो जाती है। परंतु कुछ तंतुओं, जैसे विस्कॉस रेयॉन, रेशम और मानव निर्मित रेशों में, जब मात्र अनुदैर्घ्य परिच्छेद ही देखते हैं, तब संदेह उत्पन्न होता है।

4. **रसायन परीक्षण :** वस्त्र-तंतुओं के परीक्षण की कड़ी में यह अंतिम एवं सबसे प्रामाणिक परीक्षण माना जाता है। यह घुलनशील परीक्षा के नाम से भी जाना जाता है। किसी एक विशिष्ट रसायन में निश्चित ताप पर निश्चित सांद्रता पर ही कोई तंतु

तंतु का नाम	अनुदैर्घ्य परिच्छेद	अनुप्रस्थ परिच्छेद
i) सूत (कपास) (कच्चा)	यह चपटा, फीते की तरह ऐंठन लिए होते हैं बीच में केंद्रीय केनल (प्रपाल) होती है जिसे ल्यूमेन कहा जाता है। आधार पर चौड़ा और सिरे की तरफ नुकीला होता जाता है।	सूत का अनुप्रस्थ परिच्छेद सेम की फली की तरह या किडनी (वृक्क) के आकार की होती है। इसमें U-आकार के तंतु भी पाए जाते हैं।
ii) मर्सरीकृत सूत	पूर्णतया मर्सरीकृत सूत की सतह मृदु होती है तथा लगभग गोल होने के साथ-साथ कम ऐंठन लिए होती है।	मर्सरी कृत सूत का अनुप्रस्थ परिच्छेद गोलाकार या अंडाकार होता है जिसमें बीचों बीच का बिंदु ल्यूमेन को दर्शाता है।
iii) टसर रेशम	अनुदैर्घ्य परिच्छेद में तार की तरह उभरी हुई सरंचना जो कि लंबे अक्ष के समांतर होती है, दिखती हैं। ये रेखाएं कभी-कभी मिलती-सी नजर आती हैं।	तंतु का अनुप्रस्थ परिच्छेद दर्शाता है कि तंतु आकार त्रिकोणाकार है, जिसके कोने गोलाई लिए हैं।
iv) शहतूत रेशम	कच्चे शहतूत रेशम के तंतु की चौड़ाई अनियमित होती है, सतह कई अनियमितताएं दर्शाती है। बिना गोंद के रेशम का अनुदैर्घ्य परिच्छेद चिकने दंड की तरह होता है।	प्रत्येक तंतु (फिलामेन्ट) लगभग दीर्धवृत्ताकार होता है, एवं इसमें दो त्रिभुजाकार रेशे समाहित रहते हैं। गोंद के रेशम का अनुप्रस्थ परिच्छेद आकार में त्रिभुज-जैसा होता है
v) ऊन	तंतु की सतह पर शल्क (स्केल) दिखते हैं। यह शल्की संरचना केवल ऊन में ही होती है, अत: इसे आसानी से पहचान सकते हैं।	तंतु का अनुप्रस्थ परिच्छेद दीर्घवृत्ताकार से गोलाकार तक दिखता है, जिसमें बीच में गहरी रेखा के रूप में मेडुला पाई जाती है।
vi) विस्कॉस रेयॉन की	इस तंतु के अनुदैर्घ्य परिच्छेद में तार के समान दिखाई देने वाली रेखाएं होती हैं जो मुख्य अक्ष के समांतर होती हैं। ये रेखाएं आपस में मिलती नहीं है।	विस्कॉस रेयॉन का अनुप्रस्थ परिच्छेद दांतेदार संरचना दर्शाता है। इसमें तीखे दांत होते हैं। अनुप्रस्थीय कन्टूर गोलाकार या दीर्घवृत्ताकार फीते तरह होते हैं।
vii) पॉलिएस्टर	इसका अनुदैर्घ्य परिच्छेद चिकनी सतह लिए होता है। इसकी बाहरी रेखा भी चिकनी होती है।	इसका अनुप्रस्थ परिच्छेद गोलाकार या दीर्घावृत्ताकार लेकिन चिकना होता है।
vii) नायलॉन	इसका अनुदैर्घ्य परिच्छेद कांच की छड़ की भांति चिकना व एकरूपता लिए होता है।	इसका अनुप्रस्थ परिच्छेद गोलाकार एवं एकरूपता लिए होता है।
ix) लिनन	इस तंतु का अनुदैर्घ्य परिच्छेद उभरे हुए आड़े-तिरछे निशान लिए होता है। इनमें अनेक उभार तथा कई दरार की तरह (बांस की जैसी) सरंचना दिखती है। (अनुदैर्घ्य रेखा के समांतर)।	अनुप्रस्थ परिच्छेद में मोटी दीवार लिए कोशिका होती है, जिसका आकार बहुभुज-जैसा होता है। इसके बीच में छोटा-सा ल्यूमेन होताहै। तार की तरह रेखाएं होती है।
x) जूट	लंबे कोशिकीय तत्व तार की तरह जुड़े रहते हैं जो कि अर्धव्यास में असमान होते हैं। बीच में चौड़ी ल्यूमेन होती है।	बहुभुजाकार मोटी दीवार होती है। ल्यूमेन का आकार गोलाकार या दीर्घवृत्ताकार होता है।
xi) ऐसीटेट रेयॉन	इसमें दो या तीन खड़ी रेखाएं साफ तौर पर दिखती है।	इसका अनुप्रस्थ परिच्छेद तीन पत्ती वाली घास की तरह दिखता है जिसमें अलग-अलग अंश होते हैं। ये गोलाकार एवं चिकने होते हैं।
xii) ऐक्रिलिक	इस तंतु की बाहरी रेखा दंड के सदृश, चिकनी होती है एवं यह रेशा पारदर्शी होता है लेकिन इसमें अनियमित खड़ी रेखाएं होती हैं। इसके बीचों-बीच में नाल- (कैनाल) जैसी संरचना होती है जो लंबाई के समांतर होती है।	इसका परिच्छेद, डंडाकार होता है या कुत्ते वाली हड्डी (डॉग बोन) के आकार का होता है।
xiii) क्यूप्रेमोनियम रेयॉन	इस तंतु में बिना कोई निशान लिए समान सतह दिखाई देती है। यह दंड के जैसी चिकनी सरंचना लिए होता है।	इसका अनुप्रस्थ परिच्छेद गोलाकार एवं चिकना, कभी-कभी अंडाकार होता है।

घुलता है एवं यही इस परीक्षण का सिद्धांत है। यह परीक्षण करते समय काफी सावधानी रखनी चाहिए, क्योंकि जो रसायन प्रयोग में लिए जाते हैं वे विषैले, ज्वलनशील एवं संक्षारक होते हैं।

(i) **ऐसीटेट रेयॉन** : यह ग्लेशियल ऐसिटिक एसिड तथा ऐसीटोन में सामान्य तापमान पर 15-20 मिनट में घुल जाता है।

(ii) **ट्राई ऐसीटेट** : यह कीटोन ट्राइक्लोरो एथथिलीन एवं एथिलीन क्लोराइड में घुल जाता है। यह कार्बन टेट्राक्लोराइड, मेथिलीन डाइक्लोराइड एवं ग्लेशियल ऐसीटिक एसिड में 25°C पर घुल जाता है।

(iii) **ऐक्रिलिक** : यह 10 से 15 मिनट में 90°C तापमान पर डाइमथिइल फार्मेल्डिहइड (D.M.F) में घुल जाता है। उबलते हुए अमोनियम थायोसायनेट में भी 70% तक आसानी से घुल जाता है।

(iv) रेशम: यह उबलते हुए 5% NaOH (सोडियम हाइड्रॉक्साइड) के घोल में पूरी तरह घुल जाता है। यह सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में भी घुल जाता है, जबकि ऊन सोडियम हाइड्रॉक्साइड में तो घुल जाती है परंतु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में नहीं घुलती। अत: ऊन व रेशम के संमिश्रण की पहचान व अलग-अलग उपस्थित मात्रा ज्ञात करने के लिए यह परीक्षण किया जाता है।

(v) **ऊन**: यह सोडियम हाइड्रॉक्साइड के 5% उबलते हुए घोल में 15-20 मिनट में पूर्णतया घुल जाता है।

(vi) **नायलॉन**: यह कमरे के तापमान पर 85% फॉर्मिक एसिड (HCOOH) में घुल जाता है। पूर्ण रूप से घुलने में 15-20 मिनट का समय लगता है। यह ऐसीटोन में नहीं घुलता है। अत: यह परीक्षण ऐसीटेट रेयॉन व नायलॉन का भ्रम दूर करने में काम में लाया जाता है।

(vii) **विस्कॉस रेयॉन**: यह 60% सल्फ्यूरिक अम्ल (गंधक का अम्ल) में कमरे के तापमान पर ही घुल जाता है। पूर्ण रूप से घुलने में 15-20 मिनट लगते हैं। यह सोडियम जिंकेट में भी घुल जाता है, जबकि सूत (कॉटन) सोडियम जिंकेट में नहीं घुलता है। अत: जिंकेट परीक्षण तब किया जाता है जब सूत व विस्कॉस रेयान का भ्रम हो।

(viii) **सूत (कपास)**: यह 75% सल्फ्यूरिक अम्ल में 15-20 मिनट के भीतर कमरे के तापमान पर घुल जाता है।

(ix) **पॉलिएस्टर**: यह गर्म मेटाक्रिसॉल में 15-20 मिनट में घुल जाता है। यह फॉर्मिक एसिड में घुलनशील नहीं है। अत: नायलॉन का भ्रम होने की स्थिति में यह परीक्षण किया जाता है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पॉलिएस्टर तथा नायलॉन का सूक्ष्मदर्शी परीक्षण लगभग एक समान होता है। अत: इसी परीक्षण से दोनों को विभेदित किया जाता है।

(x) **पॉलिप्रोपिलीन**: यह उबलते हुए जाइलोल में घुल जाता है।

(xii) **पॉलिऐक्रिलोनाट्राइल**: यह डाईमिथाइल फार्मेल्डीहाइड में घुल जाता है।

इस प्रकार विविध वस्त्र-तंतुओं का उचित परीक्षण कर यह ज्ञात कर सकते हैं कि अज्ञात तंतु कौन-सा/कौन-से हैं इसके पश्चात् इनका उपयोग सही स्थान पर किया जा सकता है।

❑

4690 HRD/10—9 A

12

राजस्थान के उपयोगी वानिकी स्रोत

डॉ. नवीन कुमार बौहरा

एक समय था जब कि भारतीय वनों की गिनती दुनिया के घने वनों में होती थी। परंतु स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् यहां के वनों और वन्य प्राणियों का तेजी से ह्रास हुआ। राजस्थान में बहुत ही कम और अनियमित वर्षा, धूल भरी आंधियां, तेज गर्मी आदि विकट एवं विपरीत परिस्थितियों में भी यहां के लोगों ने वनों के संरक्षण में अपना अमूल्य योगदान दिया। अपने पारंपरिक और धार्मिक वृक्षों की रक्षा हेतु यहां के निवासियों में अपने जीवन की बलि देकर एक अनूठा उदाहरण पेश किया जो विश्व भर में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। प्रस्तुत लेख में राजस्थान के वानिकी स्रोतों से मिलने वाले उत्पादों की सूची तैयार करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय वानिकी का इतिहास गौरवमय रहा है। यहां के वनों की गिनती दुनिया के घने वनों में होती थी। यहां पर 3000 से अधिक पक्षियों और 500 से अधिक जानवरों की जातियां मिलती थीं।

अपने देश की आजादी के पश्चात् वनों एवं वन्य प्राणियों का तेजी से ह्रास हुआ है। भारत में वन सेवा निर्माण और पहले वन महा निरीक्षक सर वी. ब्राड्रिन की नियुक्ति के साथ ही 1864 में वैज्ञानिक वानिकी की नींव रखी गई। भारत के पश्चिमी भागों में विशेषकर राजस्थान में, वातावरणीय परिस्थितियों के प्रतिकूल होने से वानिकी कार्यों में आशाजनक सफलता नहीं मिल पाई है तथा आज भी यहां वनों का क्षेत्रफल न्यूनतम निर्धारित वनों के क्षेत्रफल से कम है।

राजस्थान की धरती पर सदियों से त्रिकाल (खाने, पीने एवं चारे की कमी) का प्रकोप रहा है। बहुत ही कम एवं अनियमित वर्षा (केवल मानूसन में), धूल भरी आधियां, तेज गर्मी आदि विकट परिस्थितियों में भी यहां के निवासियों ने वनों के संरक्षण हेतु अच्छा प्रयास किया है। खेजडली गांव में यहां के पारंपरिक एवं धार्मिक वृक्ष खेजड़ी की रक्षा हेतु सैकड़ों लोगों ने अपने जीवन की बलि देकर एक अनूठा उदाहरण पेश किया है जो विश्व भर में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

राजस्थान में जहां खेजड़ी (*प्रोसोपिससिनेरिया*) से सांगरी, खोखा, आदि खाद्य पदार्थ मिलते हैं, वहीं कूमट (*एकेशियासेनॉगल*) तथा अन्य को मिलाकर पचकूटा की विशिष्ट एवं प्रोटीनयुक्त सब्जी बनाई जाती है। यहां के स्थानीय वृक्षों को संरक्षित रखने में इस क्षेत्र के. लोगों ने बहुत रुचि दिखाई है, जिससे विपरीत परिस्थितियों में भी वानिकी के स्रोतों का संरक्षण संभव हो पाया है।

इस लेख में राजस्थान के स्थानीय वानिकी स्रोतों से मिलने वाले उत्पादों की सूची बनाने का प्रयास किया गया है, जो इस प्रकार है:

4690 HRD/10—9 B

रेशो देने वाले पादप : ये रेशे छाल से या पत्तियों से प्राप्त हो सकते हैं।

छाल से मिलने वाले रेशों के पादप स्रोत :

1. *स्टरकुलिया उरेन्स* करैया
2. *हैलिक्टेरिस आइसोरा* मरोरफली
3. *यूजीनिया यूजैन्सिस* सन्डेन
4. *अकेसिया ल्यूकोफेलिया* करंज
5. *बौहिनिया रेसीमोसा* जीन्जा
6. *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* पलाश, ढाक
7. *केलोट्रोपिस प्रोसेरा* आक
8. *फाइकस रीलीजिओसा* पीपल
9. *फाइकस बेंगालेन्यिस* बरगद
10. *कार्डिया ओब्लीकुआ.* गौंदा
11. *कॉर्डिया रोथिल* गोंदी
12. *लेनिया कोरोमेन्डलिका* गोंदल
13. *काइडिया केलीसिना* पूला
14. *एरीथ्राइना सुबेरोसा* गढापलाश
15. *कोट्रोलेरिया बुरहिया* सेनिया
16. *लैप्टीनिया पाइरोटोक्निका* खीफ

पत्तियों से रेशे देने वाले पादप स्रोत

1. *पैन्डेनस टिक्टोरियस* केवड़ा
2. *टाइफा एलीफैन्टाइना* सीरा, पटेरा
3. *ऐगैव अमेरिकाना* अमरीकी, अलोप रामबांस
4. *फीनिक्स डैक्टिलीफेरा* खजूर
5. *बोरैसस फ्लेबेलीफर* टाड़

रेशम-जैसे धागे देने वाले पौधे

1. *बॉम्बिक्स सीबा* सेमल, इंडियन कपोक
2. *कोलीस्परमम किरलिजियोसम* गेनियारा
3. *केलोट्रोपिस प्रोसेरा* आक
4. *टाइफा ऐलीफेन्टाइना* ऐरा, पटेरा
5. *मोलारीना* ऐन्टीडाइसेन्टीरिका इंद्राजों

तैलीय बीज वाले वानिकी स्रोत

1. *मधूका इंडिका* महुआ
2. *पोंगैमिया पिनौटा* करंज
3. *अनाडिरेक्टा इंडिका* नीम
4. *जैट्रोफा कुरकस* रतनजोत, जमालगोटा
5. *सैल्वेड़ोरा ओलिआइडिस* पीलू, काकन
6. *सैल्वेडोरा परसिका* खारा जाल
7. *बेलेनाइटस ऐजिप्टीका* हींगोट
8. *सैपिन्डस इमरजीनेटस* अरीठा
9. *कोलोसिन्पेस बलगौईस* इंद्रायन
10. *मिसुसॉप्स ऐलिनगाई* मौलसिरी

टैनिन एवं डाई के स्रोत पादप

(अ) छाल से मिलने वाले टैनिन के स्रोत :

1. *ऐकेशिया निलोटिका* बबूल
2. *एकेशिया ल्यूकोफोलि*
3. *कसिया फिस्टुला* अमलतास
4. *केसिया ओरिकूलेटा* आंवल, ताखार
5. *अर्मिलेरिया ऐलेटा* सदद
6. *टर्मिनेलिया अर्जुना* अर्जुना, खोड़ा
7. *टेमोरिक्स एफाइला* फराश
8. *इन्गा डलसिस* जंगल जलेबी
9. *लेनिया कोरोमंडालिका* गोडल

(ब) फलों से मिलने वाले टैनिन के स्रोत

1. *ऐम्बलिका ऑफिसिनेलिस* आंवला
2. *अर्मिनेलिया बोलिरिका* बहेड़ा
3. *ऐकेसिया निलोटिका* बबूल
4. *जिजिफस ग्लेबीरिभा* गटबोर

(स) पत्तियों से मिलने वाले टैनिन के स्रोत

1. *ऐनोगेसिस लैटिफोलिया* धावड़ा
2. *ऐनोगेसिस पेनडुला* धोकड़ा
3. *कैरिसा स्पाइनेल* करौंदा
4. *लासोनिया इनर्मिस* हिना, मेंहदी
5. *ऐम्बलिका आफिसिनेलिस* आंवला
6. *प्रोसोपिस सिनेरेरिया* (पत्तियों की गांठ से) खेजड़ी
7. *टैमेरिक्स एफाइला* (पत्तियों की गांठ से) फराश

डाई के वानिकी स्रोत

वानस्पतिक नाम	पादप का भाग	साधारण/ प्रचलित नाम
1. *अकेसिया कटैचू*	लकड़ी	खैर
2. *टर्मिनेलिया ऐलेटा*	छाल	सदद
3. *मिमुसॉप्स ऐलिंनगाई*	छाल	मौलसिरी
4. *लेनिया कोरोमंडलिका*	छाल	गौडल
5. *मैलोटस फिलीपीन्सिस*	फल	कमैला, टोहिनी
6. *ब्यूटिया मोनास्पर्मा*	पुष्प	पलाश
7. *निकटेन्थस आर्बोर-ट्रिस्टिस*	पुष्प	हरसिंगार
8. *रिगाटिया टिन्कटोरिया*	फूल	खिरनी
9. *मोरिंडा टिन्कटोरिया*	जड़	आल
10. *पुनिका ग्रेनेटम*	जड़	अनार

गोंद व रेजिन देने वाले पादप स्रोत

1. *अकेशिया निलोटिका*	गम	बबूल
2. *अकेशिया सेनेगल*	गम	कूमटा
3. *अकेशिया जैकमोटाई*	गम	बाओनली
4. *अकेसिया कटैचू*	गम	खैर
5. *अकेशिया ल्यूकोफ्लोइया*		अरंज
6. *ऐनोगेसिस लेटिफोलिया*	गम	धावडा
7. *ऐनोगेसिस पेनडुला*	गम	धाकड़ा

8. *ऐंगल मारमीलोस*		बेल
9. *अजोडिरेक्टा इंडिका*		नीम
10. *बोहिनिया रेसीमोसा*		जिरंजा
11. *बोसविलिया सिरैटा*	गम	सलार
12.*बोम्बैक्स सीबा*	गम	सेमल
13. *बुचैनिया लैटिफोलिया*	गम	चिरैंजी
14. *ब्यूटिया मानोस्पर्मा*	गम	बंगाल पलाश
15. *कोलोर्स्पमम रिलीजिओसा*	गम	ट्रेगाकैन्थ मोनिआरा
16. *कोमिफेरा विगटाई*	गम	गूगल
17. *ल्यूसीनिया ल्यूकोसिफैला*		सुबबूल
18.*मोरिंगा ओलिफेरा*	गम	सेंजना
19.*मैंगिफैरा इंडिका*	गम	आम
20.*टेरोकार्पस मारसूयिम.*	गम	बीजासल
21.*स्टरकूलिया यूरेन्स*	गम	कटीरा

औषधीय पादप

1. *ऐसपेरेगस रेसीमोसस*	जड़	सतावरी
2. *कुरकूलिगो जाति*	जड़	सफेद मूसली
3. *कूरकूलिगो जाति*	जड़	काली मूसली
4. *बोरहाविया डिफ्यूजा*	जड़	पुर्ननवा, सांथी
5. *हेमीडेसमम इंडिकस*	जड़	अनंतमूल
6. *साइका कॉरडीफोलिया*	जड़	बेला
7. *कुरकुमा ऐरोमैटिका*	जड़	वन हल्दी
8. *ड्रोक्सीलोन इंडिकम*	जड़	सायोनाका
9. *बेलेनाइटेस ऐजिपप्टिका*	जड़	हिंगोट
10.*विथैनिया सोम्नीफेरा*	जड़	अश्वगंधा
11.*ऐगल मारमीलोस*	जड़ तथा अन्य	बेल
12.*केसिया फिस्टुला*	जड़ व फल	अमलतास
13.*जिमनिमा सिलवेस्टरी*	पत्तियां	गुड़मार
14.*वीटैक्स मैगुनडो*	पत्तियां	नीगाड
15.*टर्मिनेलिया अर्जुना*	छाल	अर्जुन
16.*ब्युटिया मोनोस्पर्मा*	छाल एवं फूल	पलाश
17.*वुडफोर्डिया फ्रूटीकोसा*	फूल	धावरी
18.*टाइबुलस टेरिसाट्रिस*	फल	गोखरू
19.*प्लाटेगो ओवेटा*	फल	ईसबगोल
20.*कोलोसिन्थीस बलगोरिस*	फल	ईसबगोल
21.*जैट्रोफा कुरकस*	फल	इंद्रायन
22.*इकलिप्टा अल्बा*	संपूर्ण पादप	भृंगराज
23.*ऐलोय बारबेडनसिस*	संपूर्ण पादप	ग्वारपाठा
24.*ट्रर्मिनेलिया बेलीरिका*	फल	बहेड़ा
25.*टैमेरिंडस इंडिका*	फल	इमली
26.*अजाडिरेक्टा इंडिका*	संपूर्ण पादप	नीम

27.*बारलेरिया केकरूलिया*		बज्रदंती सफेद
28.*बारलेरिया क्रिस्ट्रेटा*		बज्रदंती पीली
29.*बारलेरिया प्रिओनिटिस*		बज्रदंती नीली
30.*ओसिमम अमेरिकेनम*		बज्रदंती बापची
31.*धतूरा मेटल*		धतूरा
32.*कनबोलकलस आरवेनसिस*		हरनपदी
33.*केसिया ओक्सीडेन्टेलिस*		कसौंदी
34.*यूजीनिया इंडिका*		कोलीकांदा
35.*टिमोस्टपोरा कोर्डिफोलिया*		नीमगिलोय

खाने योग्य पदार्थ देने वाले वानिकी स्रोत

(अ) फल देने वाले

1. *एंनोना स्क्वैमोसा*	सीताफल
2. *जिजिफस मोरिसिआना*	बेर
3. *जिजिफस नुमुलेरिया*	झरबेर
4. *डायोस्पाइरोस मेलोनक्सीलोना*	तेंदू
5. *ऐगल मारमीलोस*	बेल
6. *ऐम्बलिका आफिसिनेलिस*	आँवला
7. *फैरोनिया लिमोनिया*	कैप, कैविट
8. *मिमुसॉप्स ऐलिनगाई*	मौलसिरी
9. *मानलकारा हैक्सेन्ड्रा*	खिरनी
10. *शाइजियम कुमिनी*	जामुन
11. *मैंगीफेरा इंडिका*	आम
12. *टैमैरिन्डस इंडिका*	इमली
13. *इन्गा डलसिस*	जंगल जलेबी
14. *कॉर्डिया ओबलीकुआ*	गूंदा
15. *कॉर्डिया पजाति*	गूंदी
16. *ग्रेविया टेनेक्स*	घुगची
17. *ग्रेविया* जाति	वन फालसा
18. *अकेशिया सेनेगल*	कूमट
19. *प्रोसोपिस सिनरेरिया*	खेजड़ी
20. *केपेरिस डेसीडुआ*	कैर
21. *सौल्वेडोरा ओलिओइडिस*	पीलू
22. *साल्वेडोरा परसिका*	खारा जाल
23. *मोरिंगा ओलिफेरा*	सहजन
24. *फाइकस ग्लोमिरेटा*	गूलर
25. *फीनिक्स सिलवेस्टरिस*	खजूर
26. *अजाडिरेक्टा इंडिका*	नीम

फूलों से मिलने वाले खाद्य के स्रोत

1. *मधुका इंडिका*	महुआ
2. *मोरिंगा ओलिफेरा*	सहजन
3. *बोहिनिया वेरीगेटा*	कचनार
4. *बॉम्बेक्स सीबा*	सेमल
5. *डेलोनिक्स ऐलेटा*	संदेशहरा
6. *यूजीनिया यूजेनसिस*	सेन्डेन

जड़ों से मिलने वाले खाद्य के स्रोत

1.	*ऐस्पेरेगस रेसीमोसा*	सतावरी
2.	*डायोसकोरिया जाति*	जमीकंद, रतालू
3.	*पोर्टुलाका ट्यूबरोसा*	वनकुल्फा

इनके अतिरिक्त कई अन्य पादपस्रोत विभिन्न प्रकार से उपयोगी हैं, जैसे साबुन के विकल्प के रूप में अरीठा *सेपिन्डस* जाति एवं *बेलेनाइटिस* जाति आदि

2. खस, चंदन व महुआ के उत्पाद सुंगध के रूप में तथा कई अन्य पादपस्रोत आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण कीटों के लिए माध्यम भी हैं। उदाहरण के लिए:

(अ) लाख कीट हेतु बेर, पलाश, पीपल आदि।

(ब) रेशम के कीट हेतु शहतूत, अर्जुना आदि।

इस प्रकार राजस्थान की स्थानीय वानिकीय जातियां बहुत ही उपयोगी हैं। इनके संरक्षण द्वारा पर्यावरण की रक्षा के साथ आर्थिक रूप से समृद्धि अर्जित की जा सकती है। ये पादप स्रोत इस क्षेत्र की विकट परिस्थितियों में इनके सच्चे एवं उपयोगी मित्र सिद्ध हुए हैं।

❑

मैं अपने देश में बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझता कि वे अपने बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर पर ढोएं और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। आज इस अस्वाभाविक परिस्थिति का निर्माण करने वालों को जरूर गुनहगार मानता हूं। दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना तक नहीं कर सकते, क्योंकि हम खुद उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं। मैं उसकी भयंकरता का अंदाज लगा सकता हूँ, क्योंकि मैं निरंतर करोड़ों मूक, दलित और पीड़ित लोगों के संपर्क में आता हूँ।

– महात्मा गांधी

13

मसालों का औषधीय रूप में महत्व

*–डॉ. भानु प्रताप**

औषधीय उपचार के लिए मसालों का उपयोग प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है। इस आधार पर चिकित्सा को सर्वसुलभ, सस्ता व प्रतिक्रियाहीन बनाया जा सकता है, जो ग्रामीण अंचल के लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। मसालों का प्रयोग भोजन में स्वाद उत्पन्न करने के अतिरिक्त विभिन्न औषधियों के रूप में भी किया जाता है। यह शरीर में विटामिनों, खनिज लवणों एवं एन्जाइमों की पूर्ति करता है। संसार की सबसे पुरानी चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद) और हमारे देश की संस्कृति ने इन मसालों में पाए जाने वाले औषधीय गुणों को पहचाना और मानव कल्याण में केवल भारत ही नहीं अन्य देश भी इसका लाभ उठा रहे हैं। इस लेख में मसालों के औषधीय महत्व का वर्णन करते हुए उनके उपयोग भी बताए जा रहे हैं।

1. इलायची *(Elettaria cardamomum)*

इसे मसालों की रानी कहा जाता है। इसकी सूखी फलियों का प्रयोग किया जाता है। अजीर्ण, अतिसार, आध्मान, उदर शूल, विशूचिका आदि रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। इसके बीजों में 2 से 4 प्रतिशत तक अत्यधिक सुगंधित वाष्पशील तेल होता है, जिसका सुवास अत्यधिक सुखद एवं प्रभाव ठंडा होता है।

2. जीरा *(Plantago pumilla)*

इसे सीधे या तेल के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग वमन, ज्वर, पथरी, मूत्रावरोध में किया जाता है। अतिसार होने पर इसका भुना हुआ चूर्ण, दही या मट्ठा के साथ देना चाहिए। ज्वर में यही चूर्ण गुड़ के साथ लेने से भूख बढ़ती है। यह पेशाब शांत करके दाह को शांत करता है। प्रसूता स्त्री में दूध बढ़ाता है व उसे शोधित करता, अर्श, स्तन, अंडकोष तथा उदर शूल में बाहर इसका लेप करना लाभदायक है। यह चर्मरोग में भी फायदा करता है।

3. सौंफ *(Foeniculum vulgare)*

अर्क के रूप में एवं सीधे प्रयोग किया जाता है। पीसकर पीने से शारीरिक ताप व मूत्रदाह शांत होता है। सूखी खांसी या मुंह की दुर्गंध दूर करने हेतु इसे चबाते हैं। सिर पर धूप लगने पर इसका लेप लगाने से आराम मिलता है। यह प्रमुख रूप से अजीर्ण, आमातिसार, ज्वर, कास, श्वास, वृक्क विकार, प्लीहा रोग व दृष्टि रोगों में उपयोगी है।

4. मेथी *(Trigonella foenum graecum)*

गर्भाशय संकोचक है वीजो का उपयोग किया जाता है एवं पत्तियां भी उपयोग में लाई जाती है। व दूध को बढ़ाने के कारण प्रसूता को इसके लड्डू खिलाने से भूख बढ़ती है तथा मल व आर्तव की शुद्धि होती है। शोक एवं दाह की शांति हेतु पत्तियों का लेप लाभदायक है। इसके बीज अजीर्ण, आमवात व कामशक्ति की

*प्रवक्ता उद्यान विज्ञान विभाग, जनता कालेज, बकेवर- इटावा (उ.प्र.)

कमजोरी में उपयोगी हैं। रक्तातिसार में बीज भूनकर खिलाते हैं। इसका उबटन त्वचा को कोमल बनाता है।

5. हल्दी (*Curcuma longa*)

त्वचा रोग, रक्त विकार, यकृत् विकार व विषम ज्वर में उपयोगी है। हल्दी को दूध में उबाल कर गुड़ के साथ पीने से कफ विकार दूर होता है। खांसी में इसका चूर्ण 1 या 2 मात्रा शहद या घी के साथ चाटने से आराम मिलता है। चोट, मोच, ऐंठन या कुचले घाव पर चूना, प्याज व पिसी हल्दी का गाढ़ा घोल हल्का गर्म करके लगाने से दर्द दूर हो जाता है। पिसी हल्दी का उबटन लगाने से त्वचा रोग दूर होते हैं।

6. धनिया (*Coriandrum sativum*)

हरी एवं सूखी पत्तियां प्रयोग में लाई जाती हैं। यह औषधि के रूप में नेत्ररोग, अतिसार व अरुचि में अत्यंत लाभदायक है। नेत्र रोगों में धनिया के क्वाथ को आंखों में डालते हैं। इसके शीत कषाय को मिट्टी एवं शहद के साथ मिलाकर देने से ज्वर एवं प्यास शांत होते हैं। जोड़ों के दर्द में इसके तेल की मालिश से आराम मिलता है। बच्चों में उदरशूल होने पर इसका तेल बताशे में डालकर दिया जाता है।

7. लहसुन (*Allium sativum*)

सीधा ही अचार या सब्जियों आदि के साथ प्रयोग करते है इसे गरीबों की कस्तूरी भी कहते हैं। इसका उपयोग वात, पाचन व फुफ्फुस विकार सहित अन्य व्याधियों में होता है। यह बहरेपन को भी सही करता है। इसके तेल को कान में डालते हैं। नियमित सेवन करने वाले को व्यायाम, अधिक पानी पीना, क्रोध करना, धूप में रहना, दूध एवं गुड़ छोड़ देना चाहिए। गंठिया में इसकी गर्म पुल्टिस बांधनी चाहिए। इसकी चटनी खाने से पेट में उत्पन्न शूल व गैस से आराम मिलता है। चोट व मोच होने पर इसे पीसकर लेप लगाना चाहिए।

8. अदरक (*Zingiber officinale*)

ताजा एवं सूखा प्रयोग किया जाता है। अदरक का सूखा रूप ही सोंठ है। यह कफनाशक, पाचक, वातनाशक है। इसके सेवन से पेट में वायु संचित नहीं होती है। श्वास, गला रोग व प्रमेह कामला में सूंडी चूर्ण गुड़ के साथ देते हैं। अदरक के रस को शहद के साथ श्वास आदि रोगों में लिया जाता है। भोजन से पहले सेंधा नमक के साथ लेने से भूख बढ़ती ह।, हृदय व वृक्क के रोगी को नहीं देना चाहिए।

मसालों की मुख्य शारीरिक उपयोगिता

लहसुन: वेदनास्थापक, शोथहर, दृष्टिशक्तिवर्धक, दीपाचन, कफहर कफदुर्गंधहर, शुक्र व आर्तवजनन रसायन।

अदरक: वेदनास्थापक, शोथहर, तृप्तिघ्न, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, श्वासहर, आमपाचक, वृष्य, शूलहर, हृददौर्बल्य।

अजवायन: शूलप्रशमन, दीपन, वातानुलोमन, कृमिघ्न, श्वासहर, शुक्रनाशन, स्तन्यनाशन, प्लीहघ्न।

जीरा: उत्तम दीपन, पाचन, ग्राही, गर्भाशयशोधक, स्तन्यजनन, वृष्य, बलवर्धक, श्वेतप्रदर में लाभप्रद, चक्षुष्य, ज्वरघ्न।

सौंफ: दीपन, पाचन, अनुलोमन, नेत्रदृष्टि, बलवर्धक, उदरशूलप्रशमन, स्तन्यजनन, शुक्रवृष्टिघ्न।

मेथी: उत्तम अंगमर्दप्रशमन, दीपन, पाचन, शूलप्रशमन, कृमिनाशक, ज्वरघ्न, उत्तम स्तन्यजनन, मधुमेह।

हल्दी: कुष्ठघ्न, वेदनास्थापक, वर्ण्य, व्रण व्रणशोध, हिक्का श्वास हर, कृमिघ्न, मूत्रसंग्रहणीय, मूलविरंजनीय।

मिर्च: लालाप्रसेकजनन, दीपन, पाचन, विशूचिकाहर, गलरोग व कुत्ते के काटने में उपयोगी।

धनिया: तृष्णानिग्रहण, रोचन, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न, कफघ्न, अर्श व छर्दि में लाभप्रद, कृमिनाशक, शूलघ्न, ज्वरघ्न।

❑

4690 HRD/10—10 A

4690 HRD/10—10 B

विविध स्तंभ

विज्ञान समाचार

डॉ. दीपक कोहली

बालों से बनाया मैमथ का जीनोम

'जुरासिक पार्क' फिल्म के बाद अब शायद वास्तव में 'आइस एज पार्क' देखने को मिले। फिल्म की कहानी में वैज्ञानिकों ने डायनोसॉर का डी.एन.ए एक मच्छर से निकाला था, तो अमेरिकी वैज्ञानिकों ने वास्तव में 'आइस एज' (हिम काल) की खास पहचान रहे 'मैमथ' का डी.एन.ए. उसके बाल से निकाला है। अब वैज्ञानिक 'मैमथ' का न्यूक्लियर जीनोम तैयार करने में लगे हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार न्यूक्लियर जीनोम मैमथ को दोबारा जीवन देने का एक मार्ग साबित हो सकता है। वैसे अब तैयार जीनोम से वैज्ञानिक मैमथ और अन्य विलुप्त जंतुओं से जुड़े ढेर सारे रहस्यों को खोलने में जरूर कामयाब हो जाएंगे। वैज्ञानिकों के अनुसार टुंड्रा प्रदेश से मिले मैमथ के बालों से डी.एन. ए. के बेहतर नमूने मिले हैं।

वैज्ञानिकों ने रूस के साइबेरिया इलाके में 12 हजार से 50 हजार साल पहले लुप्त हो चुके मैमथ के बालों से पूरे-पूरे 10 माइटोकॉन्ड्रियल जीनोम प्राप्त किए हैं। माइटोकॉन्ड्रिया कोशिका को पावर हाउस कहा जाता है और माइटोकॉन्ड्रियल डी.एन.ए. माँ से दूसरी पीढ़ी तक जाता है। इसलिए, यह डी.एन.ए वैज्ञानिकों को मैमथ के वंश, आनुवंशिक विविधता और जनसंख्या से जुड़े रहस्यों का पता लगाने में सहायक सिद्ध होगा। इस शोध से पहले अन्य विलुप्त जंतुओं के केवल सात माइटोकॉन्ड्रियल जीनोम बनाए जा सके थे। इनमें से चार प्राचीन पक्षियों, दो मैमथ और एक मैमथ जैसे ही हाथी की प्राचीन जाति के थे। इस तरह के जीनोम को बनाने के लिए आमतौर पर डी.एन.ए हड्डियों और माँसपेशियों से निकाला जाता है। लेकिन ये नमूने जल्दी ही खराब हो जाते हैं, इसलिए एक जीनोम अनुक्रम बनाने के लिए वैज्ञानिकों को दसियों साल तक लग जाते हैं।

पेन्सिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर स्टीफेन शसर का कहना है कि बालों का गुच्छा प्लास्टिक की तरह होता है। इसमें कोई बैक्टीरिया प्रवेश नहीं कर पाता और यह खराब नहीं होता। शसर और उनकी टीम अब माइटोकॉन्ड्रियल जीनोम से यह पता लगाने की कोशिश कर रही हैं कि आखिर 10 हजार साल पहले हिम काल (आइस एज) खत्म हो जाने पर अचानक मैमथ कैसे गायब हो गए। वैज्ञानिक इस शोध को अन्य जीवों से भी जोड़ रहे हैं। शसर का कहना है कि यदि हमें हिमकाल के खत्म होने के वक्त के आँकड़ों से पता लगता है कि मैमथ के अलावा अन्य जीवों की संख्या भी प्रभावित हुई है तो हमें उस वक्त की सटीक जानकारी मिल जाएगी। प्रोफेसर शसर की टीम इसके अलावा मैमथ का पूरा न्यूक्लियर जीनोम तैयार करने में लगी है। इस तरह का जीनोम मैमथ को एक बार फिर जीवित करने में मदद कर सकता है। पहली बार मैमथ की हड्डी से जीनोम बनाने वाले लेपिंग, जर्मनी के मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट फॉर एवोल्यूशनरी ऐन्थ्रोपोलॉजी' के माइकल होरेतर का कहना है कि यह बेहतरीन काम है लेकिन मैमथ के अलावा अन्य प्राचीन जंतुओं के बालों वाले जीवाश्म का मिलना अत्यंत ही कठिन है।

डेंगू फैलाने वाले जीन की खोज

वैज्ञानिकों ने डेंगू वायरस का मानव शरीर में संक्रमण फैलाने वाले जीन को खोज निकाला है। वैज्ञानिकों को आशा है कि इस खोज से मच्छरों से फैलने वाली बीमारी का बेहतर इलाज खोजा जा सकेगा।

सिंगापुर स्थित 'नोवार्टिस इंस्टीट्यूट फॉर ट्रॉपिकल डिजीज' और 'जीनोम इंस्टीट्यूट' के वैज्ञानिक यह जानने में लगे थे कि आखिर किस तरह डेंगू का वायरस मानव शरीर में बीमारी का कारण बनता है। वैज्ञानिकों ने 'माइक्रो ऐरे' तकनीक के आधार पर इंसानी शरीर में मौजूद लगभग हर जीन पर वायरस की मौजूदगी के कारण होने वाले असर पर नजर रखी। अनुसंधान दल ने इस बात की पड़ताल की कि यह जीन डेंगू के वायरस से सामना होने पर क्या प्रतिक्रिया देता है। इससे पहले वैज्ञानिकों ने शोध किया कि मच्छरों से संक्रमण होने के बाद वायरस किस प्रोटीन से जुड़ता है। डेंगू वायरस को शरीर में शरण देने वाले प्रोटीन और जीन की खोज के बाद माना जा रहा है कि डेंगू वायरस से निपटने के लिए जल्द ही बेहतर दवा खोजी जा सकेगी। उल्लेखनीय है कि हर साल डेंगू बुखार के 50 लाख से 1 करोड़ मामले सामने आते हैं, जिनमें से लगभग पांच लाख मामले बुखार के कारण दिमाग की नसें फट जाने और कोमा में चले जाने के होते हैं।

वैज्ञानिकों को जीन नहीं अपितु मिल गया ब्रह्मास्त्र

रंग-रूप को निर्धारित करने वाले जीन के रूप में वैज्ञानिकों को ब्रह्मास्त्र सरीखा हथियार मिल गया है। सबसे बड़ी सफलता चिरयौवन की कामना की तरफ कदम बढ़ाना है। ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने स्तनपायी जंतुओं के जीवनचक्र को निर्धारित करने वाले जीन का पता लगा लिया है। यह जीन जरा भवन (एजिंग) और उससे जुड़ी अन्य बीमारियों यानि दिल से जुड़े रोग, एल्जाइमर और कैंसर जैसे रोगों से लड़ने में सहायता कर सकता है। जबकि फ्रांस के वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि कोई व्यक्ति कितनी जल्दी एड्स/एच. आई.बी. संक्रमित हो सकता है इसके पीछे भी जीन का ही हाथ होता है। इस खोज ने एड्स का टीका बनाने में लगे वैज्ञानिकों की मुश्किल को हल कर दिया है। एक अन्य रोचक खोज में अमेरिका के येल विश्वविद्यालय ने पता लगाया है कि लड़कों और लड़कियों के व्यवहार में अंतर सिर्फ हॉर्मोनों के असर से ही नहीं बल्कि जीन के भी असर से भी होता है।

एड्स से जुड़े शोध के अनुसार किसी व्यक्ति का आनुवंशिक प्रोफाइल शरीर में एच.आई.वी. के बढ़ने की दर को निर्धारित कर देता है। यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास हेल्थ साइंस सेंटर के वैज्ञानिकों के अनुसार दो जीनों के प्रभाव के कारण प्रतिरोधक क्षमता और वायरस के बीच संबंध निर्धारित होते हैं। सीसीआर 5 और सी.सी.एल. 3 एल 1 नामक इन जीनों में सीसी आर 5 सीडी 4, प्रतिरोधी कोशिका में वायरस द्वारा किए गए हमले के स्थान को नियंत्रित करता है। इस बीच सीसीएल 3 एल 1 प्रतिरोधक क्षमता द्वारा कीमोकाइन को भेजने वाले संकेतों को नियंत्रित करता है। कीमोकाइन का काम एच.आई.बी. को सी.सी.आर 5 तक पहुँचने से रोकना है। इससे पहले के शोध से भी ज्ञात हो चुका है कि सीसीआर 5, एचआई.वी. को रोकने में सक्षम है। वैज्ञानिकों के अनुसार अगर किसी व्यक्ति में इन जीनों की अतिरिक्त प्रतिलिपियाँ हैं तो उस व्यक्ति को एच.आई.वी. का संक्रमण बहुत मुश्किल से होगा। जबकि येल विश्वविद्यालय के शोध के अनुसार गुणसूत्र ही निर्धारित कर देते हैं कि होने वाला बच्चा लड़का होगा या लड़की, और किसी हद तक उसके व्यवहार को भी। प्रोफेसर जेन टेलर के नेतृत्व में वैज्ञानिकों ने आनुवंशिक जोड़-तोड़ करके ऐसे चूहे विकसित किए, जिनमें से एक में पुरुष हॉर्मोन की

ग्रंथियाँ और मादा क्रोमोसोम थे तो दूसरे में मादा हॉर्मोन की ग्रंथियो और नर क्रोमोसेाम थे। इस प्रक्रिया ने हॉर्मोन और जीन के अलग-अलग प्रभाव को समझने में सहायता की। दूसरी तरफ, 'सेंटर फॉर रिसर्च ऑन एजिंग, यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन' के शोध के अनुसार आई.आर.एस-1 नामक जीन इंसुलिन के निर्माण को नियंत्रित करता है। यह हॉर्मोन खून में ग्लूकोज की मात्रा को निर्धारित करता है। वैज्ञानिकों ने पाया कि जिस चूहे में आईआरएस-1 हटा दी गई, वह अन्य से 20 प्रतिशत अधिक स्वस्थ और ज्यादा दिनों तक जीवित रहा। वैज्ञानिकों के अनुसार यह शोध प्रदर्शित करता है कि इस जीन का उम्र और मानव विकास में महत्वपूर्ण हाथ है और अगर इस जीन पर ध्यान दिया जाए तो चिरयौवन का लक्ष्य पाया जा सकता है।

गंदा पानी पी बैक्टीरिया बनाएँगे हाइड्रोजन

सिरके और गंदे पानी पर जीवित रहने वाले बैक्टीरिया बिजली के हल्के झटकों का सहारा पाकर गाड़ियों को चलाने में समर्थ शुद्ध हाइड्रोजन पैदा कर सकते हैं। वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि तेल की तंगी की ओर तेजी से बढ़ रही दुनिया के लिए वैकल्पिक ईंधन के रूप में हाइड्रोजन के उपयोग का सपना आशा से पहले साकार हो सकता है।

अमेरिका की पेन स्टेट यूनिवर्सिटी के प्रो. ब्रूस लोगान के मुताबिक बैक्टीरिया की सहायता से जैविक रूप से अपघटित हो सकने वाले लगभग हर किस्म के पदार्थों को हाइड्रोजन ईंधन में बदला जा सकता है।

हाइड्रोजन बनाने के लिए उपयोग में लाई जाने वाली वर्तमान रासायनिक विधियों की तुलना में यह जैविक विधि अधिक पर्यावरण अनुकूल है। हाइड्रोजन जैसे वैकल्पिक ईंधन के उत्पादन के लिए फिलहाल इस्तेमाल की जाने वाली विधियां ऊर्जा के लिए प्रदूषणकारी जीवाश्म ईंधन पर निर्भर हैं।

प्रो. लोगान और उनके सहयोगी शाओआन चेंग बैक्टीरिया की सहायता से हाइड्रोजन बनाने के लिए ऐसीटिक एसिड युक्त कक्ष का उपयोग करते हैं। इस कक्ष का एनोड दानेदार ग्रेफाइट का बना होता है जबकि कैथोड प्लैटीनम उत्प्रेरक युक्त कार्बन का बना होता है। बैक्टीरिया ऐसीटिक एसिड को खाकर इलेक्ट्रॉन व प्रोटॉन विमुक्त करते हैं, जिसकी वजह से 0.3 वोल्ट का विभव पैदा हो जाता है। जब किसी बाहरी स्रोत से इसमें 0.2 वोल्ट का विभव और जोड़ा जाता है तो हाइड्रोजन गैस बुलबुलों की शक्ल में घोल से निकलने लगती है।

लोगान के मुताबिक इस प्रक्रिया में बाहर से दी गई ऊर्जा के मुकाबले हाइड्रोजन के रूप में 288 प्रतिशत अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है।

मच्छरों की सहायता से बनेगा मलेरिया का टीका

कहते हैं 'कांटे से काँटा निकाला जा सकता है'। अमेरिका के वैज्ञानिकों ने शायद इसी मुहावरे से प्रेरणा ली है। इन दिनों कुछ वैज्ञानिक मच्छरों की फौज की सहायता से ऐसा टीका तैयार करने में लगे है, जो मलेरिया जैसे रोग के संक्रमण को रोकने में समर्थ है। स्टीफन हॉफमैन ने यह टीका बनाने के लिए 'सोनेरिया इन॰' नामक बॉयोटिक कंपनी की स्थापना की है। स्टीफन ने कहा कि यह कदम मलेरिया का वैक्सीन बनाने की तरफ महत्वपूर्ण कदम है। उन्हें आशा थी कि यह वैक्सीन 2008 तक दुनिया की सेवा करने के लिए उपलब्ध हो जाएगा। हॉफमैन ने बताया कि इस वैक्सीन को बनाने का उपाय अत्यंत सरल है। इसके लिए मच्छरों से निकाले गए परजीवी प्लाज्मोडियम को रेडिएशन की सहायता से बेहद कमजोर किया जाएगा और फिर उन्हें टीके के रूप में स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट करा दिया जाएगा। कमजोर परजीवियों के कारण व्यक्ति को बुखार नहीं होगा लेकिन उसका शरीर खुद को इस तरह के परजीवियों से लड़ने लायक बना लेगा अर्थात् शरीर की प्रतिरोधक क्षमता स्वयं ही

मलेरिया से लड़ने में समर्थ हो जाएगी। हॉफमैन बताते हैं कि इस टीके का परीक्षण किया जा चुका है और 90 फीसदी मामलों में पूरी सफलता मिली है।

नैनो रेडियो

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने कार्बन नैनोट्यूब की सहायता से दुनिया का सबसे छोटा कामकाजी रेडियो बनाने का दावा किया है। हमारे बालों से भी हजारों गुना पतला यह रेडियो न सिर्फ रेडियो तरंगों को पकड़ता है बल्कि उन्हें सुनने लायक ध्वनि-संकेतों में भी बदल सकता है।

विशेषज्ञों के अनुसार कार्बन नैनोट्यूब रेडियो की खोज नैनो-इलेक्ट्रॉनिकी के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पड़ाव साबित होगा। कैलीफोर्निया के पीटर बर्क और क्रिस रथरग्लेन द्वारा विकसित नैनो रेडियो का डिमॉड्यूलेटर ए एम रेडियो तरंगों को ध्वनि में बदलने में सक्षम है। प्रयोगशाला प्रदर्शन में खोजकर्ताओं ने अपने रेडियो के माध्यम से शास्त्रीय संगीत सुना कर लोगों को विस्मित कर दिया। हालांकि इससे पहले भी अन्य वैज्ञानिकों ने नैनो आकार के रेडियो वेव डिटेक्टर बनाए हैं, लेकिन इस आकार का संपूर्ण कामकाजी रेडियो बनाने का प्रयास पहली बार हुआ है। शोधकर्ताओं को उम्मीद है कि उनकी खोज के बाद नैनो आकार के अन्य पुर्जे व पूर्ण वायरलेस कम्युनिकेशन सिस्टम तैयार करना आसान हो जाएगा।

डाइनासॉर से बचकर भाग नहीं सकते थे 'बेहकम' भी

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि धरती पर डाइनासॉर से बड़ा मांसाहारी जीव अब तक दूसरा नहीं हुआ है। वैज्ञानिकों ने इनके बारे में कुछ और भी चौंकाने वाली बातें पता लगाई हैं। हाल में लंदन में हुए एक शोध के अनुसार भयानक टाइरैनोसोरस ('टी-रेक्स') अपने भारी भरकम शरीर के बावजूद भी आज के प्रोफेशनल फुटबालरों से ज्यादा तेज दौड़ता था। वैज्ञानिकों ने सुपर कंप्यूटर पर डाइनासॉर के शरीर की आंतरिक संरचना और मांसपेशियों की बनावट का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है। इसके अनुसार विशालकाय डाइनासॉर 18 मील प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ते थे। यह गति फुटबाल स्टार 'बेकहम' को पीछे छोड़ने के लिए काफी है।

शोध का उद्‌देश्य यह जानना था कि 16 करोड़ साल पहले तक धरती पर राज करने वाले डाइनासॉर के दौड़ने की गति आज के जानवरों से कम थी या ज्यादा? वैज्ञानिकों ने बताया कि डाइनासॉर के ग्रुप का सबसे छोटा सदस्य 40 मील प्रति घंटे की चाल से दौड़ सकता था। यह चाल धरती पर पाए जाने वाले दो पैरों के किसी भी दूसरे जानवर से अधिक है। मैनचेस्टर विश्वविद्यालय के डा. बिल सेलर ने बताया कि उन्होंने तेज रफ्तार वाले भारी भरकम पक्षियों-शुतुरमुर्ग और एमू के दौड़ने के दौरान मांसपेशियों के काम करने की तकनीक का सुपर कंप्यूटर पर अध्ययन किया। डाइनासॉर की रफ्तार आंकने के लिए सुपर कंप्यूटर में एक ऐसा प्रोग्राम डाला गया जिसमें दौड़ने के दौरान होने वाली शारीरिक गतिविधियों के आंकड़े डाले गए थे। जब इसमें डाइनासॉर के कंकाल और मांसपेशियों का डाटा फीड किया तो परिणाम हैरान करने वाला था। धरती पर पैदा हुआ अब तक का विशालतम सरीसृप वर्ग का यह जानवर आज भी आकर्षण का मुख्य केंद्र है। यह बहस जारी है कि इनका खून आज के मैमलों (स्तनधारी) की तरह गर्म था या फिर किसी रेप्टाइल (सरीसृप) की तरह ठंडा। डॉ. सेलर के मुताबिक अधिकतम गति से दौड़ने के दौरान डाइनासॉर की मांसपेशियां पर्याप्त रूप से गर्म हो जाती थी। यह तथ्य किसी सरीसृप वर्ग के जानवर के लिए भी सच है। ❑

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा गेहूँ की नई किस्में

बेहतर गुणवत्ता और अधिक उपज देने वाली गेहूँ की सात और जौ की एक किस्म को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने किसानों के लिए जारी करने की अनुशंसा की है। देश के विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए इन किस्मों की पहचान अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ व जौ परियोजना के तहत धारवाड़ में की गई। नवीनतम किस्मों की प्रसस्करण गुणवत्ता काफी अच्छी है जिनसे ब्रेड, बिस्किुट या पास्ता बनाने में फायदा होगा। पहली बार मध्य भारत के क्षेत्रों के लिए जल्द पक का तैयार होने वाली नई किस्में एच.आई. 1531 मध्यम ऊंचाई वाली बौनी किस्म मध्य भारत के असिाचित व नियत्रित सिचाई वाले क्षेत्रों के लिए इस किस्म को भारतीय कृषिउ अनुसंधान परिषद् के इंदौर स्थित क्षेत्रीय केंद्र ने विकसित किया है असिंचित क्षेत्रों में एच.आई 153 की पैदावार 25 क्विटल प्रति हेक्टेयर है जबकि सिंचाई वाले क्षेत्रों में इसकी पैदावार 27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है इस क्षेत्र में प्रचलित अन्य किस्मों के मुकाबले एचआई 1531 में पैदावार क्षमता अच्छी है जो पत्तों के रतुआ रोग का प्रतिरोधी है, कम लागत और बाजार में जल्द उपलब्ध होने वाली यह किस्म बधाता के लिए उपयुक्त है। किसानों को अधिक पैदावार और बाजार मूल्य मिलने के कारण अच्छा फायदा हाने की संभावना है। करनाल स्थित गेहूं अनुसंधान निदेशालय की नई किस्मों-डी बी डब्ल्यू 16 पीले और भूरे रतुओं रोगों के प्रति प्रतिरोधी है, जिसकी बुआई काफी देर से की जा सकती है। अन्य प्रचलित गेहूं की किस्मों के मुकाबले यह पत्तियों के झुलसा रोग का प्रतिरोधी है। इस किस्म की बुवाई उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में ही का जा सकती है उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में ही गेहूं की उपज का 40 प्रतिशत उत्पादन होता है डी बी डब्ल्यू 16 की औसत उपज 39 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है जो 120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान, नई दिल्ली द्वारा विकसित एच.डी 2888 किस्म उत्तर-पूर्वी मैदान क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तने का रतुआ रोग के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी और पत्तियों के झूलसा रोग के प्रति सामान्य प्रतिरोधी है। औसत 23 क्विंटल प्रति हेक्टयर उपज वाली किस्म से बेहतर गुणवत्ता वाला आटा तैयार किया जा सकता है। महाराष्ट्र कर्नाटक, आध्रप्रदेश गोवा और तमिलनाडु के लिए गेहूं की दो नई किस्मों की पहचान की गई है। एन आइए 917 की अच्छी पैदावार क्षमता के साथ-साथ रोगों की प्रतिरोधी और गुणवत्ता भी अच्छी है। पंजाब कृषि विश्वविदयालय द्वारा विकसित पी.बी. डब्ल्यू 533 चपाती के लिए उपयुक्त है। यही नहीं ब्रेड व बिस्किट बनाने के लिए इसकी गुणवत्त उत्तम है अकोला स्थित डा. पजाव राव देशमुख कृषि विद्यापीठ द्वारा विकसित ए.के. डी. डब्ल्यू 2997-16 से किसानों की अब कई मुश्किले अब खत्म हो जाएंगी। अधिक उपज और अच्छी गुणवत्ता वाली इस किस्म से असिंचित क्षेत्रों के किसानों की अभिलाषा पूरी हुई हैं तना और पत्तियों का रतुआ रोग प्रतिरोधी गेहूँ की एक अन्य किस्म डीडी. 10254 की उपत 38 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए की गई है। शून्य जुताई अर्थात् जीरो टिलेज तकनीक की लोकप्रियता उत्तर पश्चिमी-और उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में काफी बढ़ चुकी है, और किसान इसे अपनाने लगे हैं। गेहूँ बुवाई करते समय इस तकनीक से भरपूर लाभ देने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए है। एक तिहाई नाइट्रोजन 50 किलोग्राम/हेक्टेयर और फॉस्फोरस 60 किलोग्राम/हेक्टेयर और पोटाश 40 किलोग्राम/हेक्टेयर की मात्रा गेहूँ की बुवाई करते समय दे देने से तकनीक शून्य जुताई का भरपूर फायदा होता है और अधिज उपज मिलती है। शेष दो तिहाई नाइट्रोजन की मात्रा बुआई के 45 दिन बाद दी जानी चाहिए। खरपतवाद नियंत्रित करने के भी अन्य उपयोगी सुझाव दिए गए हैं जिन्हे अपनाकर गेहूँ की अच्छी पैदावर की जा सकती है।

4690 MRD/10-11

आलू की नई किस्म चिप्सोना

आलू के प्रसंस्करण से जुड़े उद्योग के लिए कुफरी चिप्सोना-3 नामक हाइब्रिड किस्म एक नई दिशा होगा इस किस्म में स्वाद के साथ सेहत का समागम है। चिप्सोना -3 किस्म की पौष्टकिता बेहतर है क्योंकि इसमें प्रोटीन, पोटैशियम और कैल्शियम की मात्रा अधिक है। इसमें उपलब्ध तत्वों के कारण चिप्सोना -3 उच्च रक्तचाप वाले लोगों के खाने के लिए उपयुक्त है। आलू के शुष्क पदार्थ जैसे चिप्स क्यूब आदि बनाने के लिए चिप्सोन -3 अन्य आलू की प्रचलित किस्में से बेहतर है। प्रोसेसिंग के लिए चिप्सोना -3 की गुणवत्ता काफी उपयुक्त है, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने शिमला स्थित केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित चिप्सोना-3 की पहचान की है जो शीध्र ही किसानो के लिए जारी की जाएगी। आलू प्रसंस्करण के लिए उद्योगों को ऐसी किस्म चाहिए जो बेहतर चिप्स रग और गुणवत्ता के साथ-साथ कम शर्करा एवं अधिक शुष्क पदार्थ वाला हो।

आलू की यह नई किस्म आंतरिक व वाह्य खूबियों से भरपूर है, देश में विकसित आलू की दो किस्में खासकर प्रसंस्करण के लिए जारी की गई है। चिप्सोना-3 के आ जाने से प्रसंस्करण उद्योगों को एक अतिरिक्त हाइब्रिड किस्म मिल जाएगी। प्रोसेसिंग के लिए निर्धारित मापदंडों पर चिप्सोना-3 से बेहतर है पकाने के बाद चिप्सोना -3 से अच्छली सुगन्ध आती है, यही नहीं इसका रंग पकने बाद भी पहले जैसा ही बना रहता है। प्रचलित आलू की इस नई किस्म में कंद फटने अथवा अनियमित आकार होने की शिकायत आती है परंतु चिप्सोन-3 में ऐसी बात नही है। नई हाइब्रिड किस्म चिप्सोना-3 की उपज 333 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। चिप्सोना-3 की उपज पहले से जारी प्रसंस्करण की दो किस्मों, चिप्सोना-1 278 क्विंटल प्रति हेक्टेयर और चिप्सोना-3 की उपज पहले से जारी प्रसंस्करण की दो अन्य किस्मों, चिप्सोना-1 278 प्रति हेक्टेयर और चिप्सोना -2 272 क्विंटल प्रति हेक्टेयर के मुकाबले लगभग 55 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अधिक है। इस किस्म में बीस प्रतिशत शुष्क पदार्थ की मात्रा है जो अंतर्राष्ट्रीय गुणता मानक पर खरा उतरा है पछेता झुलसा प्रतिरोधी चिप्सोना-3 के केंद्रों को गोल -अंडाकार प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त है क्योंकि इससे कंद से छिल्के उतारते समय अनुप्युक्त केंद्रों की मात्रा घटती है। चिप्स और फलेक्स के लिए उत्तम चिप्सोना-3 का उपयोग सामान्य रूप से खाने के लिए भी किया जा सकता है। पछेता पश्चिमी-मध्य मैदानी क्षेत्रों के किसानों को पछेता झुलसा प्रतिरोधक गुण होने के कारण उम्मीद है कि प्रचलित लोकप्रिय आलू की किस्म कुफरी बहार के बदले अच्छा विकल्प मिल गया है। अब किसान बेहतर गुणवत्ता वाले प्रसंसकरण हेतु उपयुक्त चिप्सोना-3 बोकर ज्यादा मुनाफा अर्जित कर सकते हैं, क्योंकि आलू आधारित उद्योगों द्वारा ज्यादा शुष्क पदार्थ देने वाली किस्में अधिक कीमत पर खरीद जाते है।

आलू की दूसरी हाइब्रिड किस्म कुफरी हिमालिनी पहाड़ों में खेती करने के लिए पषिद् द्वारा पहचान की गई है। पिछले कुछ सालों से इस क्षेत्र में पछेता झुलसा के कारण किसानों को मुश्किल हो रही है। उपोष्ण मैदानी क्षेत्रों के लिए भी कुफरी गिरिराज की तुलना में कुफरी हिमलिनी से 10 प्रतिशत अधिक पैदावार की जा सकती है। 110-120 अवधि में तैयार होने वाली इस किस्म की भंडारण गुणवत्ता पहाड़ी क्षेत्रों के अन्य किस्मों से अच्छा है। ग्रीष्म काल में कुफरी हिमालिनी की बुआई उत्तर-पश्चिमी व उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में की जा सकती है। भारत विश्व में तीसरा देश है जहां 12.7 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में आलू की खेती की जाती है और 231 20 लाख टन आलू की खेती का उत्पादन होता है वर्ष 2003-04 के दौरान आूल की पैदावार 18.2 टन प्रति हेक्टेयर थी उत्तरप्रदेश पश्चिमी बंगाल, बिहार, पंजाब गुजरात और मध्य प्रदेश ऐसे प्रातं है, जहां आलू की खेती प्रमुखता से की जाती है। उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक आलू का उत्पादन होता है जबकि पश्चिमी बंगाल में आलू की पैदावार सबसे अधिक 24.7 टन प्रति हेक्टेयर है। देश में विकसित अभी तक लगभग 38 आलू की किस्में जारी की जा चुकी हैं जिनसे आलू का उत्पादन बढ़ा है।

वानिकी शब्द-संग्रह

वनविज्ञान या वानिकी की तकनीकी अंग्रेजी-हिंदी शब्दावली का यह सम्मेकित-परिवर्धित-संशोधित संस्करण है। प्रारंभ में वन विज्ञान की शब्दावली आयोग की विज्ञान शब्दावली के अंतर्गत वनस्पतिविज्ञान, भूगोल, कृषि तथा प्राणिविज्ञान के शब्दों में ही शामिल थी। आयोग ने पहली बार सन् 1976 में वनविज्ञान संबंधी शब्द 'वाषिकी शब्दावली' नामक प्रकाशन में प्रस्तुत किए थे। इसके तीस वर्ष बाद आयोग का प्रस्तुत प्रकाशन वस्तुत: स्वागतयोग्य है।

इस शब्दसंग्रह में लगभग नौ हजार तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय दिए गए है। विद्वान संपादक ने वन विज्ञान की सभी शाखाओं के शब्दों को विभिन्न स्रोतों से लाकर इसमें समाहित किया है। शब्दों के हिंदी पर्यायों के निर्धारण के लिए वनविज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबद्ध सुयोग्य विद्वानों की सहायता ली गई है, जिनका विवरण पुस्तक के प्रारंभ में दिया गया है।

इस शब्द संग्रह में हिंदी पर्यायों को सुगम बनाने के लिए अनेक विधियों का सहारा लिया गया है, जैसे:

1. **अंग्रेजी के शब्दों का मात्र लिप्यंतरण करना:**

Pedocal	पेडोकल
nitrate reductase	नाइट्रेट रिडक्टेज
periphysis	पेरिफिसिस
podzol (podsol)	पॉडजोल (पॉडसोल)
styptic	स्टाइप्टिक
guanin	गुआनिन

2. **हिंदी और अंग्रेजी दोनो में पर्याय-निर्धारण :**

calorific value	कैलोरी मान, ऊष्मीय मान
calcareous (soil)	कैल्सियमी मृदा, चूनेदार मृदा
callus	कैलस, किण
mulch (farming)	मल्च (कृषि), पलवार (कृषि)
cuticle	क्युटिकल, 1. उपत्वचा 2. उपचर्म

3. **समास में हिंदी-अंग्रेजी दोनों का प्रयोग :**

calciphile	कैल्सियमरागी
haploconidium	अगुणित कोनिडियम
cycadophyte	साइकैडोद्भिद् (साइकैड+उद्भिद्
cutinization	क्यूटिनीकरण
lithotrophy	अकार्बनिकपोषिता
hemiascoppore	हेमिएस्कसी बीजाणु

4. संकल्पनामूलक शब्दों के हिंदी पर्याय उपलब्ध कराए गए है। पर्यायों में से ध्यान रखा गया है कि मूल अंग्रेजी शब्द की अपेक्षा उनसे अर्थ का ज्ञान अधिक सहजता से हो:

cactus cyst nematode	नागफनी पुटी सूत्रकृमि
caloritropism	तापानुवर्तन
haplotropism	स्पर्शानुवर्तन
halophobe	लवणभीरु
haplochlamydeous	एकपरिदल पुंजी
hamabiosis	अप्रयोजनी सहजीवन
skeletorization	शैलमृदाभवन
oogamy	विषमयुग्मकता
line breeding	क्रमिक अंत:प्रजनन

इस शब्दसंग्रह की अन्य विशेषता इसके परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में वनस्पतियों के वैज्ञानिक तथा सामान्य नाम द्विवदी नामावली सहित दिए गए है। अंग्रेजी नामो का लिप्यंतरण करने में अत्यंत सावधानी बरती गई है और विभिन्न सूत्रों की सहायता से उनकी मानक वर्तनी देने का प्रयास किया गया है। वैज्ञानिक नाम के साथ-साथ सामान्य नाम देने में भी वैज्ञानिकता का ध्यान रखा गया है। द्वितीय परिशिष्ट में प्राणियों के वैज्ञानिक तथा सामान्य नाम भी द्विपदी नामावली सहित दिए गए हैं। इनकी अनिवार्यता इस कारण है कि इन्हें हिंदी में लिखते समय प्राय: अलग-अलग विद्वान अपने ही अनुसार इनकी परस्पर-भिन्न वर्तनी का प्रयोग करते है जिसके कारण इनकी एकरूपता और मानकरूपता की समस्या हो जाती है।

पुस्तक के आरंभ में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक देवनागरी वर्णमाला तथा वर्तनी भी की गई है। द्रष्टव्य है कि मानक वर्तनी भी मानक विज्ञान-लेखन का अनिवार्य अंग है। ❑

वस्तुत: प्रस्तुत वानिकी शब्द-संग्रह का प्रकाशन वनविज्ञान से संबद्ध वैज्ञानिक **साहित्य** के लेखकों, प्राध्यापको, शोधकताओं आदि के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है

वानिकी शब्द संग्रह : संपादक अशोक ना. सेलवटकर वैज्ञानिक तथा तकनीकी **शब्दावली आयोग**, 2007 पृष्ठ संख्या कीमत 447 रु. (**समीक्षक** : देवेन्द्र दत्त नौटियाल)

4690 HRD/10—12

लेखक परिचय

- डॉ. दिनेश मणि, 35/3 जवाहर लाल नेहरू मार्ग, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद।
- डॉ. प्रेम किशोर पूर्व प्रधान वैज्ञानिक, कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा रोड, नई दिल्ली।
- डॉ. विनीता मित्तल, कीटविज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा रोड, नई दिल्ली।
- डॉ. गणेश राय, कीटविज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा रोड, नई दिल्ली।
- डॉ. राम रोशन शर्मा, कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी संभाग, भा. कृ. अनु. संस्थान, नई दिल्ली।
- डॉ. दीनानाथ शुक्ल, पूर्व अध्यक्ष, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- डॉ. इंदु भूषण पांडेय, वरिष्ठ वैज्ञानिक (दलहन) राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय पूसा, समस्तीपुर, बिहार।
- सब्जी की पौध का उत्पादन : एक व्यवसाय प्रवीण कुमार सिंह, कृषिविज्ञान केंद्र तवीजी फार्म अजमेर।
- प्रेमचंद चौधरी, कृषिविज्ञान केंद्र, तवीजी फर्मा, अजमेर।
- डॉ. आर एस सेंगर, सह निदेशक, सरदार बल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ।
- डॉ. दीपक कोहली, 5/104 विपुल खंड गोमती नगर, लखनऊ
- डॉ. के.के गुप्ता, पूर्व उपाचार्य, जाकिर हुसैन महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- डॉ. विजय कुमार उपाध्याय, कृष्ण एन्कलेव, राजेन्द्रनगर, डाक. जमगढिया, चास, जिला बोकारो, झारखंड।
- डॉ. श्याम सुंदर बैरवा, वस्त्र रसायन विभाग, माणिक्यलाल वर्मा वस्त्र एवं अभियांत्रिकी महाविद्यालय भीलवाड़ा, राजस्थान।
- डॉ. नवीन कुमार बौहरा, प्लाट नं. 389 गाली नं. 10 मिल्कमैन कालोनी पॉल रोड, जोधपुर, राजस्थान
- डॉ. भानुप्रताप, प्रवक्ता, उद्यान विज्ञान विभाग, जनता कालेज, बकेवर, इटावा
- देवेद्र दत्त नौटियाल, पूर्व सचिव, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
- अशोक ना.सेलवटकर, वैज्ञानिक अधिकारी शब्दावली आयोग नई दिल्ली

आयोग के प्रकाशन

(क) आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची

क्र.सं.	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1, 2 (पृ. 2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 819)	236.00
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1,2 (1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान (पृ. 223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषाविज्ञान, नृविज्ञान	239.40
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (पृ. 104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिक) (पृ. 566)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-2 (पृ. 186)	84.00
11.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : प्राणिविज्ञान (पृ. 526)	311.00

विषयवार शब्दावलियाँ/शब्दसंग्रह

1.	मानविकी शब्दावली - (नृविज्ञान) (पृ. 179)	10.00
2.	कंप्यूटरविज्ञान शब्दावली (पृ. 337)	87.00
3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (पृ. 378)	55.00
4.	वाणिज्य शब्दावली (पृ. 172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
6.	अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	30.00
7.	भाषाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 249)	113.00
8.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	20.00
9.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	20.00
10.	पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली (पृ. 174)	82.00
11.	लोक-प्रशासन शब्दावली (पृ. 98)	52.00
12.	अर्थशास्त्र शब्दावली (मानविकी शब्दावली-9) (पृ. 96)	4.40

13. नृविज्ञान शब्दावली (पृ. 198)	10.00
14. गुणता-नियंत्रण शब्दावली (पृ. 67)	38.00
15. रेशमविज्ञान शब्दावली (पृ. 85)	50.00
16. कोशिका-जैविकी शब्द-संग्रह (पृ. 197)	62.00
17. गणित शब्द संग्रह (पृ. 357)	143.00
18. भौतिकी शब्द-संग्रह (पृ. 536)	119.00
19. गृहविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 144)	60.00
20. रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (पृ. 167)	200.00
21. भूगोल शब्द-संग्रह (पृ. 369)	320.00
22. खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
23. भूविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 328)	15.00
24. संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (पृ. 48)	15.00
25. पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (पृ. 184)	12.25
26. सूचना एवं प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह (पृ. 393)	231.00
27. पर्यावरणविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 429)	381.00
28. रसायन शब्द-संग्रह (पृ. 918)	592.00

मूलभूत शब्दावलियां

1. गणित की मूलभूत शब्दावली (पृ. 135)	नि:शुल्क
2. कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 115)	नि:शुल्क
3. भूगोल की मूलभूत शब्दावली (पृ. 156)	नि:शुल्क
4. भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 141)	नि:शुल्क
5. वनस्पतिविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 207)	नि:शुल्क
6. पशुचिकित्सा विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 179)	नि:शुल्क
7. आयुर्विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 613)	नि:शुल्क
8. अर्थशास्त्र की मूलभूत शब्दावचली	नि:शुल्क

(ख) परिभाषा-कोशों की सूची

1. भूविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 284)	10.00

2. भूगोल परिभाषा-कोश-2 (सामान्य भूविज्ञान) (पृ. 196)	13.50
3. संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	-
4. शैलविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 195)	-
5. प्रारंभिक पारिभाषिक रसायन कोश (पृ. 242)	3.25
6. उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
7. रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश-3 (पृ. 280)	25.00
8. पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश (पृ. 188)	173.00
9. प्रारंभिक पारिभाषिक कोश: गणित (पृ. 298)	18.75
10. गणित परिभाषा कोश (पृ. 253)	11.00
11. आधुनिक बीजगणित परिभाषा कोश (पृ. 159)	11.00
12. सांख्यिकी परिभाषा कोश (पृ. 432)	18.00
13. भौतिकी परिभाषा कोश (पृ. 212)	3.15
14. आधुनिक भौतिकी परिभाषा कोश (पृ. 290)	13.00
15. भूगोल परिभाषा कोश	10.00
16. मानव भूगोल परिभाषा कोश (पृ. 228)	18.00
17. मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 361)	231.00
18. गृहविज्ञान परिभाषा कोश	-
19. गृहविज्ञान परिभाषा कोश-2 (पृ. 64)	9.00
20. इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश (पृ. 215)	22.00
21. तरल यांत्रिकी परिभाष कोश (पृ. 76)	10.00
22. यांत्रिकी इंजीनियरी परिभाषा कोश (पृ. 135)	84.00
23. सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश (पृ. 112)	61.00
24. विद्यतु इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
25. धातुकर्म परिभाषा कोश (पृ. 441)	278.00
26. आयुर्विज्ञान पारिभाषिक कोश (शल्यविज्ञान)	48.05
27. आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश	336.00
28. इतिहास परिभाषा कोश (पृ. 297)	20.50
29. शिक्षा परिभाषा कोश (पृ. 197)	13.50

30. शिक्षा परिभाषा कोश-2 (पृ. 205)	99.00
31. मनोविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 62) 142	9.50
32. दर्शन परिभाषा कोश (पृ. 432)	9.75
33. अर्थशास्त्र परिभाषा कोश (पृ. 232)	117.00
34. अर्थमिति परिभाषा कोश (पृ. 245)	17.65
35. वाणिज्य परिभाषा कोश (पृ. 173)	24.70
36. समाजकार्य परिभाषा कोश (पृ. 183)	-
37. समाजशास्त्र परिभाषा कोश (पृ. 212)	71.40
38. सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 287)	24.00
39. पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 196)	49.00
40. पत्रकारिता परिभाषा कोश (पृ. 164)	87.50
41. पुरातत्व परिभाषा कोश (पृ. 391)	76.50
42. पुरातत्व परिभाषा कोश-2 (पृ. 453)	509.00
43. पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश (पृ. 104)	28.55
44. भाषाविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 212)	89.00
45. भाषाविज्ञान परिभाषा कोश खंड-2 (पृ. 259)	59.00
46. कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 144)	102.00
47. राजनीतिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 356)	343.00
48. प्रबंधविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 191)	170.00
49. अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश (पृ. 293)	344.00
50. कृषिकीटविज्ञान परिभाषा कोश (पृ.213)	75.00
51. वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 204)	75.00
52. पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (161)	80.50
53. पादप आनुवांशकी परिभाषा कोश (पृ. 185)	75.00
54. पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 138)	77.00
55. मृदाविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 149)	77.00
56. प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 220)	10.00
57. प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (परिवर्धित (पृ. 540)	216.00

58. सूक्ष्मजैविकी परिभाषा कोश (पृ. 193)	45.00
59. भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-1 (पृ. 171)	151.00
60. सूत्रकृमिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 263)	125.00
(ग)पाठमालाएं/मोनोग्राफ	
1. ऐतिहासिक नगर	195.00
2. प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
3. समुद्री यात्राएं	79.00
4. विश्व दर्शन	53.00
5. अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
6. कोयला : एक परिचय	294.00
7. वाहित मल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
8. पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.50
9. रत्न-विज्ञान - एक परिचय	115.00
10. 2.दूरीक एवं 2-मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
11. पराज्यामितीय फलन	90.00
12. ऊर्जा : संसाधन और संरक्षण	105.00
13. स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	176.00
14. समकालीन भारतीय दर्शन के मानववादी चिंतक	153.00
15. स्वास्थ्य दीपिका	200.00
16. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
17. भारतीय कृषि का विकास	-
18. भविष्य की आशा- हिंद महासागर	154.00
19. जैव प्रौद्योगिकी - अनुसंधान एवं विकास	134.00
20. इस्पात - एक परिचय	146.00
21. मानसून - एक परिचय	146.00
22. मैग्नेसाइट - एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	167.00
23. प्राकृतिक खेती	167.00
24. हिंदी में स्वतंत्रतापरवर्ती विज्ञान-लेखन	280.00

25. विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्म समभाव अवधारणा - एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00
26. हिंदी विज्ञान पत्रकारिता- कल, आज और कल	167.00
27. मृदा एवं पादप पोषण	-
28. नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00
29. पादपों में कीटप्रतिरोध और समेकित कीटप्रबंधन	357.00
30. द्रवचालित मशीन	-
31. पृथ्वी : उद्‌भव और विकास	80.00
32. भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
33. भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	82.00
34. भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	60.00
35. पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	995.00
36. ठोस पदार्थ यांत्रिकी	34.00
37. वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद एवं मौलिक लेखन	410.00
38. मृदा उर्वरता	93.00
39. पशुओं के कवकीय रोग उनका उपचार	54.00
40. समाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी	118.00
41. विश्व के प्रमुख धर्म	100.00
42. सैन्य-विज्ञान पाठसंग्रह	270.00
43. लेटर प्रेस मुद्रण	68.00
44. लोहीय तथा अलोहीय धातु	58.00
45. बाल मनोविज्ञान पाठमाला (3)	343.00
46. भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	40.00
47. विकास मनोविज्ञान (भाग 1)	30.00
48. विकास मनोविज्ञान (भाग 2)	40.00
49. पृथ्वी से पुरातत्व	
50. भारत के सात आश्चर्य	
51. पादप सुरक्षा के विविध आयाम	
52. पादप प्रवर्धन एवं पादप प्रबंधन	

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली - 110066

महोदय,

कृपया मुझे **विज्ञान गरिमा सिंधु** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए मास.....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क.....रुपए, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित एक अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं.....दिनांक.....बैंक का नाम.....द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम ....

पूरा पता ....

भवदीय

हस्ताक्षर

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	प्रकाशन नियंत्रक प्रकाशन विभाग (शहरी मामले व रोजगार मंत्रालय) सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	किताब महल प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21 नई दिल्ली - 110001
3.	पुस्तक डिपो प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के.एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

विक्री संबंधी नियम

1 आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25% की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी की जाती है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T. New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती है। पुस्तकें भेजने पर पैंकिंग तथा फॉरवर्डिग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मागकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें ले जा सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों को पूर्ति डाक द्वारा संभव नही होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात कध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यः बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नही होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

4690 HRD/10— MGIPRRND—1000 Copies

© भारत सरकार

प्रकाशन-नियंत्रक

जुलाई–सितंबर-2009

पी. सी. एस. टी. टी. (7-9) 09

1,000

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2011